योगविद्या

वर्ष 7 अंक 7
जुलाई 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : गुरु-भक्ति

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गीता में गुरु-भक्ति

गीता में एक जगह भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, 'मैं साधक को बुद्धि-योग देता हूँ जिससे वह मुझ तक पहुँच पाता है' और अन्य स्थान पर वे कहते हैं, 'महान् ज्ञानियों अर्थात् गुरुजनों के पास जाओ, उन्हें प्रणाम करो, उनकी सेवा करो, उनसे प्रश्न पूछो, वे तुम्हें सर्वोच्च ज्ञान देंगे।'

इन दो कथनों को एक साथ देखने पर एक महान् सत्य की झलक मिलती है–गुरु और कोई नहीं, पृथ्वी पर अवतरित साक्षात् भगवान हैं। आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति या तो भगवान के अव्यक्त, निराकार स्वरूप के प्रति अनन्य भक्ति विकसित करके हो सकती है या फिर उनके गुरु स्वरूप मूर्त, साकार रूप के माध्यम से, जिस पर तुम ध्यान कर सकते हो, जिनके व्यक्तित्व को तुम देख, सुन और छू सकते हो, जो तुम्हें व्यक्तिगत रूप से आत्मज्ञान के पथ पर प्रेरित और निर्देशित कर सकते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 7 • जुलाई 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

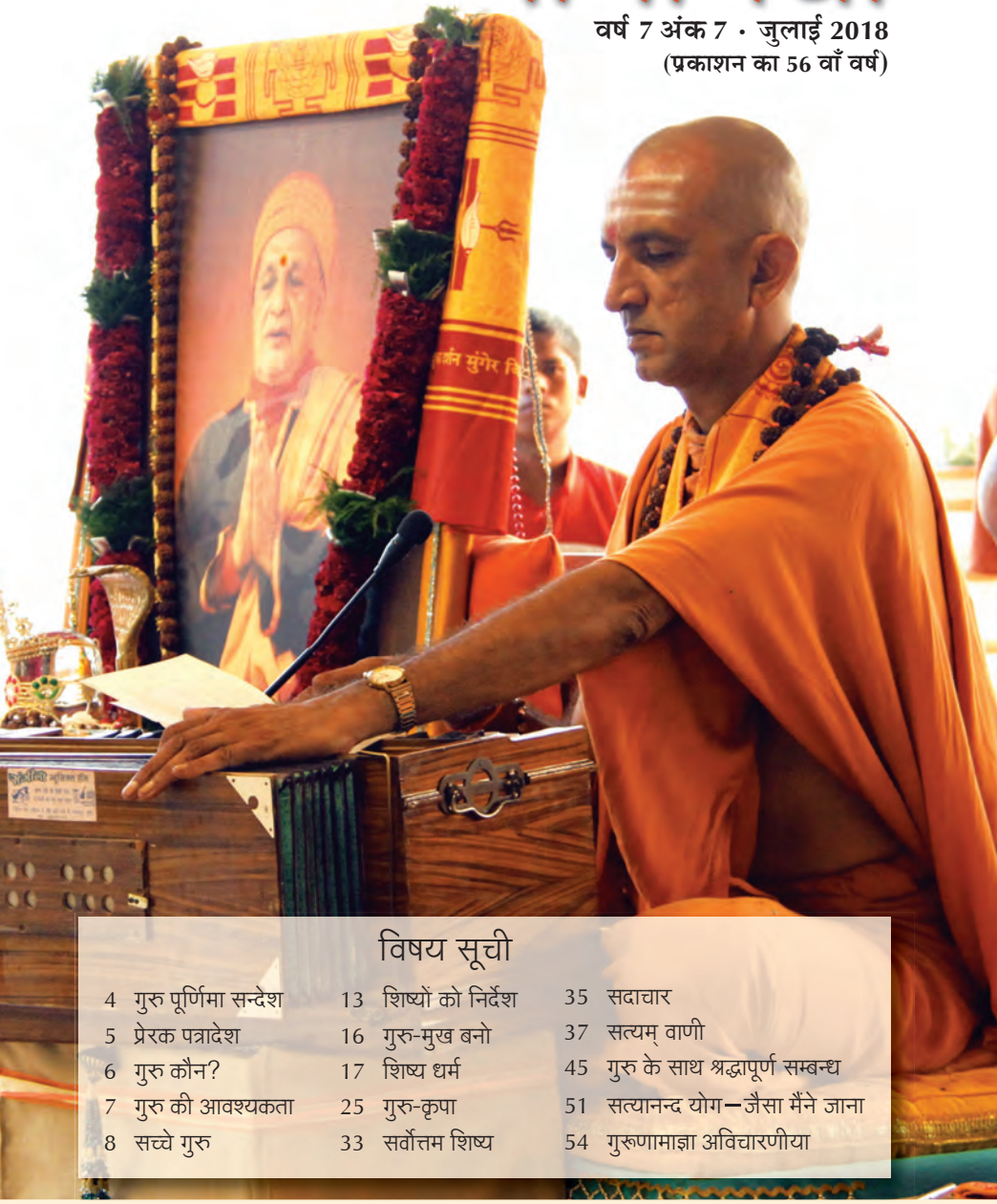

विषय सूची

4 गुरु पूर्णिमा सन्देश
5 प्रेरक पत्रादेश
6 गुरु कौन?
7 गुरु की आवश्यकता
8 सच्चे गुरु
13 शिष्यों को निर्देश
16 गुरु-मुख बनो
17 शिष्य धर्म
25 गुरु-कृपा
33 सर्वोत्तम शिष्य
35 सदाचार
37 सत्यम् वाणी
45 गुरु के साथ श्रद्धापूर्ण सम्बन्ध
51 सत्यानन्द योग—जैसा मैंने जाना
54 गुरूणामाज्ञा अविचारणीया

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

गुरु पूर्णिमा सन्देश

आषाढ़ पूर्णिमा का दिन अत्यन्त पावन गुरु पूर्णिमा दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह शुभ दिवस महान् ऋषि कृष्ण द्वैपायन की स्मृति को समर्पित है, जो वेद-व्यास तथा बादरायण के नाम से भी विख्यात हैं। संन्यासियों का चातुर्मास इसी दिन प्रारम्भ होता है। इस अवधि में संन्यासी स्वाध्याय, तपस्या तथा ब्रह्म-सूत्रों के अध्ययन-प्रवचन हेतु किसी एक स्थान पर स्थिर हो जाते हैं।

इस महान् दिवस पर हम लोग व्यास देव एवं ब्रह्मविद्या गुरुओं की आराधना करते हैं तथा ब्रह्मसूत्रों एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन भी प्रारम्भ करते हैं। इसी दिन वर्षाऋतु का प्रारम्भ होता है। ग्रीष्मऋतु में अवशोषित जल आकाश में बादलों के रूप में मंडराने लगता है और पर्याप्त वृष्टि होने लगती है। सर्वत्र नवजीवन का संचार होने लगता है। इसी प्रकार आप भी उन सभी दर्शनों एवं सिद्धान्तों को, जिन्हें आपने गहन अध्ययन द्वारा आत्मसात् किया है, अपने व्यावहारिक जीवन में अभिव्यक्त करना आरम्भ कीजिये। इसी दिन से अपने अन्दर आध्यात्मिकता की एक नयी तरंग उत्पन्न कीजिये। आपने बहुत कुछ पढ़ा, सुना, देखा एवं सीखा है। अब अपनी साधना द्वारा उन बातों को प्रेम, सेवा तथा समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित प्रभु की अनवरत पूजा में रूपान्तरित कीजिये।

गुरु-पूजा दिवस के रूप में यह दिन एक सच्चे साधक के लिये शुद्ध आनन्द का दिन होता है। प्रत्येक साधक उत्सुकतापूर्वक एवं भक्ति-भाव से इस पावन दिवस की प्रतीक्षा करता है और इस दिन के आने पर वह भाव-विह्वल होकर अपने गुरु को श्रद्धा-सुमन अर्पित करता है। गुरु स्वयं ब्रह्म हैं, साक्षात् ईश्वर हैं। वे ही आसक्ति की जंजीर को तोड़कर साधक को संसार के बन्धन से मुक्त करते हैं।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रेरक पत्रादेश

21.7.1956, शक्ति, मध्य प्रदेश

मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं भी स्वामी विवेकानन्द की तरह पूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक परम्परा को अविच्छिन्न-रूपेण जनव्यापी कर सकूँगा, पर मेरी यही एक महत्त्वाकांक्षा रही है। महत्त्वाकांक्षा एक ऐसी वस्तु है, जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर रहती है। किसी भी महान् कार्य में सफल होने के लिए तीव्र महत्त्वाकांक्षा की आवश्यकता होती है। मेरी जो चिर अभिलाषा रही कि पूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक परम्परा को जनव्यापी बना सकूँ, वह अब एक तीव्र महत्त्वाकांक्षा के रूप में परिवर्तित हो चुकी है। और इस क्षेत्र में मुझे निरन्तर आगे बढ़ते जाना है।

यह याद रखो कि जिस व्यक्ति में तीव्र महत्त्वाकांक्षा रहेगी, वह जीवन-पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता जायेगा, पीछे मुड़ ही नहीं सकता है। इसी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मैंने 12 वर्षों तक आश्रम वास करके परिव्राजक जीवन स्वीकार किया है। इस जीवन को धारण करने से मैं अवश्य अपने आदर्श स्वप्नों को साकार करने का पुरुषार्थ करूँगा। सफलता का श्रेय तो कहीं और ही है। मैं तो चाहता हूँ कि आसन, प्राणायाम, भजन, संकीर्त्तन, सत्संग द्वारा आज के पीड़ित एवं दु:खी मानव जीवन में आध्यात्मिकता लाकर उनका जीवन सरस और सुन्दर बना दूँ।

इधर कार्य-प्रणाली निश्चित हो जाने पर मैं फिर दूसरे स्थानों की ओर चल दूँगा। मेरे कोई सहयोगी मेरी जलाई ज्योति को संभाले रहेंगे। लेकिन, इस ज्योति को अमर बनाने के लिए स्त्री-पुरुष सभी के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है। सब को पूरी कर्मठता एवं सच्ची लगन से इसमें सहयोग देना होगा, और तभी यह ज्योति मानव के सुखद, उन्नत, भव्य एवं सच्चे जीवन के प्रतीक रूप में अमर बनकर जलती रहेगी।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु कौन?

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

'मैं गुरु हूँ', ऐसी घोषणा करके कोई गुरु नहीं बन सकता। जो ऐसा करते हैं, वे समाज में सबसे बड़े धोखेबाज होते हैं। गुरुजन तो कुछ ऐसे विशेष, गिने-चुने व्यक्ति होते हैं, जिनका चयन स्वयं नियति करती है। ऐसे व्यक्तियों का एक विशिष्ट प्रारब्ध, विशेष संस्कार और कर्म रहते हैं, एक पूर्वनियोजित लक्ष्य और मिशन रहता है। उस विशिष्ट प्रारब्ध की वजह से न तो परिवार उन्हें रोक सकता है, न ही समाज। जब उनके प्रारब्ध के साकार होने का समय आता है तब कोई भी व्यक्ति, वस्तु या घटना उनके मार्ग में बाधा नहीं बन सकती। संसार की माया और समाज के बन्धनों में इतनी ताकत नहीं होती कि उन्हें बाँध सकें। आदि शंकराचार्य, रमण महर्षि, स्वामी शिवानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी—सभी ने कम उम्र में घर-परिवार छोड़कर निवृत्ति मार्ग अपनाया। यह उनका निर्णय था या नियति का?

नियति ही दैवी कार्य के लिए किसी व्यक्ति को तैयार करती है और जब वह व्यक्ति तैयार हो जाता है तब उसके भीतर गुरु तत्त्व जागृत होता है। उस व्यक्ति को मालूम भी नहीं रहता, लेकिन गुरु तत्त्व की जो सुरभि होती है, उसका जो

प्रकाश होता है, वही दूसरों को उस व्यक्ति की ओर आकृष्ट करता है और वे लोग उसे गुरु रूप में देखने लगते हैं। जिस व्यक्ति के भीतर गुरु तत्त्व प्रकाशित हो गया है, वह अपने आप को कभी गुरु रूप में नहीं, बल्कि हमेशा शिष्य रूप में ही देखेगा। अगर वह अपने आप को गुरु रूप में देखेगा, तो उसका अहंकार उसको अवश्य मार देगा। तब भगवान भी उसे बचा नहीं पाएँगे। दूसरी ओर अगर एक सिद्ध भी यदि अपने आप को शिष्य रूप में ही देखे, तो उसे तुम चाहे कितना भी सिर पर उठाओ, उसका अहंकार कभी बढ़ेगा नहीं, क्योंकि वह पूर्णतया नष्ट हो चुका है।

गुरु की आवश्यकता

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

हम चाहे जो हों, जैसे हों, गुरु हमारे जीवन की आवश्यकता हैं। हम सब जीवन-सागर में भटके हुए यात्री हैं। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हमें एक दिशा, एक लक्ष्य की आवश्यकता है। हमारे जीवन की संपूर्ण अवधि एक लक्ष्य की खोज में ही बीत जाती है। हम धन, प्रतिष्ठा एवं सामाजिक सम्बन्धों में इसे खोजने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु अन्त में हमें इन सुखों की भ्रामकता की ही अनुभूति होती है। और जब आदमी बूढ़ा हो जाता है, तब उसे अनुभव होता है कि जीवन ने उसे ठग लिया। उसे लगता है कि सब कुछ व्यर्थ और अर्थहीन था।

यदि आप अपने जीवन का सिंहावलोकन करें तो लगेगा कि आप अनेक दरवाजे खटखटाते रहे, पर असफल ही लौटे। आप शाश्वत प्रेम की खोज करते हैं, किन्तु वह आपको छल जाता है; आप धन एवं प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ते हैं, किन्तु ये केवल क्षणिक हैं। इन्हें प्राप्त कर लेने के बाद भी आप असंतुष्ट रह जाते हैं। यदि आपको सुखी जीवन के सभी साधन उपलब्ध हों तो भी एक असुरक्षा की भावना आपको चिन्तन के क्षणों में परेशान करती रहती है।

केवल ज्ञानी ही जीवन के वास्तविक संदेश और लक्ष्य को समझ पाते हैं। वे समझ जाते हैं कि भौतिक सुखों की अपेक्षा अन्य महत्त्वपूर्ण चीजें भी हैं। यह ज्ञान उन्हें अन्तर्मुखी बनाता है तथा वे जीवन के अधिक अर्थपूर्ण सम्बन्धों की खोज करने लगते हैं। यही ज्ञान उन्हें अन्तरात्मा की खोज की ओर उन्मुख करता है।

अन्तरात्मा की ओर जाने वाले पथ को हम कैसे जान सकते हैं? मुख्य समस्या तो यह है कि हमें अपना लक्ष्य ही मालूम नहीं। ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिये? हमें किसी ऐसे व्यक्ति को खोज निकालना है जिन्होंने इस मार्ग पर चलकर उस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। वही व्यक्ति इस मार्ग पर हमारा मार्गदर्शक हो सकता है। जिन लोगों ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझ लिया है, उन्होंने किसी ऐसे प्रज्ञायुक्त एवं अनुभवी व्यक्ति को खोज निकाला है जो उच्चतर लक्ष्य की ओर जाने वाली राह पर उनका मार्गदर्शन कर सके। दूसरे शब्दों में, उन्हें गुरु मिल गया है।

सच्चे गुरु

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

वेदों में कहा गया है, 'जिस व्यक्ति का गुरु है, वह ज्ञानी है।' जिसे गुरु प्राप्त हैं, वही ब्रह्म या परम सत्ता को जान सकता है। गुरु से प्राप्त ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान होता है।

गुरु मार्गदर्शक होते हैं। आध्यात्मिक राजमार्ग पर गुरु ही एकमात्र सहारा होते हैं। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु का होना परमावश्यक है। शास्त्र-ज्ञान में निपुण होने के बावजूद भी आप गुरु की सहायता बिना आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

गुरु तीनों लोकों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। वे ज्ञान की कांतिमयी ज्योति हैं। जो अपने गुरु के प्रति भक्ति-भाव से युक्त होकर उनके चरणों में स्वयं को समर्पित करता है, वही आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने में सक्षम होता है।

ईश्वर कभी आपसे दूर नहीं हैं। बन्धन की इस अवस्था में वही प्रभु अदृश्य रूप से आपका पालन-पोषण करते हैं और वे ही आध्यात्मिक गुरु के रूप में आकर आपका मार्गदर्शन करते हैं। इसलिए अपने गुरु को हाड़-मांस से निर्मित एक सामान्य व्यक्ति कदापि मत समझिए। उन्हें ईश्वर के समतुल्य मानिए। एक सत्यान्वेषी जिज्ञासु के लिए यह पहली शर्त्त है।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक दीन-हीन, परन्तु आज्ञाकारी एवं भक्त रसोइये को अपना शिष्य बनाया, क्योंकि उसमें उन्हें आध्यात्मिक ज्योति दिखाई पड़ी। सिक्खों के एक गुरु भिश्ती का काम करते थे, तो दूसरे उबला चना बेचते थे।

आपकी आँखें अज्ञान के मोतियाबिन्द से ढकी हुई हैं, इसीलिए तो आप अन्धे हैं। अपने गुरु की शिक्षाओं का सख्ती से पालन कीजिए और आध्यात्मिक मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ते जाइये। गुरु द्वारा बताये गये उपचार से अज्ञान का मोतियाबिन्द अपने आप दूर हो जाएगा।

यदि आप आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदों में आपकी असीम श्रद्धा होनी चाहिए। वेदों में असीम श्रद्धा का तात्पर्य गुरु में असीम श्रद्धा से है, क्योंकि वेदों की शिक्षा गुरु की वाणी के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है।

आपके अन्दर सद्गुरु से मिलन हेतु अतिशय प्रेम एवं प्रबल इच्छा होनी चाहिए। तभी आपको उनका दर्शन प्राप्त हो सकेगा। गुरु के सामने अपने हृदय को खोल दीजिए और उनकी कृपा की याचना कीजिए। नम्रता एवं आत्मत्याग के माध्यम से ही ईश्वर या गुरु की कृपा प्राप्त होती है। इस हेतु आपको लगन के साथ प्रयास करना चाहिए। तभी आप लाभान्वित हो सकेंगे।

गुरु का मार्गदर्शन तथा श्रद्धा, भक्ति एवं आत्मसमर्पण युक्त साधना ही सभी आध्यात्मिक दर्शनों और धर्मों के आधार रहे हैं। सब के प्रति प्रेम, इन्द्रिय संयम,

ब्रह्मनिष्ठ गुरु का मार्गदर्शन, गहन श्रद्धा और आत्मत्याग—ये सभी शीघ्र लक्ष्य-प्राप्ति में निश्चित रूप से सहायक होते हैं।

एक जीवनमुक्त ऋषि ही वास्तविक गुरु और आध्यात्मिक मार्गदर्शक होते हैं। ऐसे सद्गुरु पूर्ण ब्रह्मविद् या ब्रह्मज्ञानी होते हैं। या यूँ कहें वे ब्रह्म के समरूप ही होते हैं। वे संसार के लिए वरदान होते हैं। अज्ञान के भवसागर में गोता लगा रहे लोगों के लिए वे आध्यात्मिक प्रकाश-स्तम्भ होते हैं। ज्ञान की मशाल हाथों में लिए वे साधकों का निरन्तर मार्गदर्शन करते हैं। ऐसे सद्गुरुओं और सन्तों की जय हो!

सद्गुरु अति विनम्र होते हैं। बाहर से वे एक सामान्य आदमी जैसे ही लगते हैं। वे कभी इस बात का प्रचार नहीं करते कि मैं सद्गुरु या ब्रह्मज्ञानी हूँ। वे कभी ऐसा नहीं कहते कि 'मैं एक प्रबुद्ध व्यक्ति हूँ। मैं अवतार हूँ। मैं तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा। मुझे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हैं।' वे पूर्णत: निष्काम होते हैं।

सद्गुरु धन, यश या प्रतिष्ठा की कामना नहीं करते। उनके अन्दर आश्रम या पन्थ की स्थापना की इच्छा भी नहीं होती। वे तो केवल समस्त संसार की उन्नति एवं विश्वबन्धुत्व की स्थापना के लिए प्रयासरत रहते हैं। वे कहते हैं, 'मेरा न कोई अनुयायी है न शिष्य; मेरा न कोई आश्रम है न सम्पत्ति।' किसी भी व्यक्ति

या वस्तु से उनकी आसक्ति नहीं होती। वे 'मैं' और 'मेरे-पन' की अवधारणा से पूर्णत: मुक्त होते हैं।

वे अपने आस-पास रहने वाले लोगों को कभी यह प्रचार करने की अनुमति नहीं देते कि वे एक पहुँचे हुए महात्मा हैं। वे लोक-प्रसिद्धि से सर्वथा दूर रहना चाहते हैं। वे हमेशा स्वयं को छिपाए रहते हैं। यदि किसी स्थान में उन्हें प्रसिद्धि मिल जाती है तो वे तत्काल उसे छोड़ देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति कहता है कि 'मैं महात्मा हूँ, मैं आत्मज्ञान-प्राप्त सद्गुरु हूँ,' और यदि उसके शिष्यगण यह प्रचारित करते हैं कि उनके गुरु अनेक सिद्धियों से युक्त हैं जिनका उन्होंने प्रदर्शन भी किया है, तो समझ लीजिए कि वह व्यक्ति महात्मा नहीं है। उपनिषदों द्वारा स्पष्ट घोषणा की गयी है कि जो व्यक्ति कहता है कि 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ', वह ब्रह्म को नहीं जानता, और जो कहता है कि 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता', वह वास्तव में ब्रह्मज्ञानी है।

यदि आप किसी व्यक्ति की संगति में उन्नत और उदात्त अनुभव करते हैं और आप पाते हैं कि वे सरल, विनीत, विनम्र, सहिष्णु, दयालु, निष्काम, नि:स्वार्थ, शान्त, प्रेममय एवं विवेकी हैं, तो उन्हें अपना गुरु बना लें। अनेक वर्षों तक सद्गुरु के सान्निध्य में रहने के बावजूद भी उनकी महानता को समझ पाना बहुत कठिन है। वे समुद्र के समान गहरे होते हैं। उनकी महिमा अकथनीय, ज्ञान वर्णनातीत तथा अवस्था अबोधगम्य होती है। अपने गुरु की सेवा करना आपका प्राथमिक कर्तव्य है। आप उनके शरीर की सेवा करें, वे आपकी आत्मा का उत्थान करेंगे।

सिद्धियों से युक्त होना किसी महात्मा की महानता की पहचान नहीं है, और न ही इससे यह प्रमाणित होता है कि उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त है। सद्गुरु किसी चमत्कार अथवा सिद्धि का प्रदर्शन नहीं करते। जिज्ञासुओं को प्रोत्साहित करने तथा उनके हृदय में अतीन्द्रिय शक्तियों के प्रति विश्वास पैदा करने हेतु वे कभी-कभी सिद्धियों का प्रदर्शन अथवा उपयोग कर सकते हैं। सद्गुरु तो असंख्य सिद्धियों से सम्पन्न तथा समस्त प्रकार के दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं।

सच्चे गुरु आत्मज्ञानी होते हैं। उन्हें आत्मा एवं वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। वे समदृष्टि एवं सन्तुलित मन से युक्त तथा राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, घमण्ड एवं अहंकार से मुक्त होते हैं। वे दया के सागर होते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से जिज्ञासु शान्ति एवं उन्नत मनोवस्था प्राप्त कर लेता है तथा उसके समस्त सन्देह दूर हो जाते हैं। वे पूर्णतया निर्भय होते हैं। वे किसी व्यक्ति से कुछ अपेक्षा नहीं रखते। उनका चरित्र अन्य लोगों के लिए आदर्श होता है। वे आह्लाद एवं आनन्द की प्रतिमूर्ति होते हैं। वे सदैव सच्चे जिज्ञासुओं की खोज में रहते हैं।

दुर्भाग्यवश यह संसार नकली गुरुओं से भरा हुआ है। ऐसे लोगों से सावधान रहिए। वे निष्कपट एवं भोले लोगों का शोषण करते तथा उन्हें अज्ञान के अंधेरे

गर्त्त में डालते हैं। वे लोगों को पथभ्रष्ट करते हैं। यह तो वैसा ही हुआ जैसे एक अन्धा आदमी दूसरे अन्धे आदमी का मार्गदर्शन करे। सिद्धियाँ व्यक्ति को ब्रह्म एवं ब्रह्मज्ञान से दूर ले जाती हैं। किसी व्यक्ति की सिद्धियों से प्रभावित मत होइए।

यदि कोई व्यक्ति यश, प्रसिद्धि, सम्पत्ति या स्वार्थपूर्ति हेतु सिद्धियों का प्रदर्शन करता है, तो समझना चाहिए कि वह धूर्त्त है। कुछ समय के बाद ऐसे व्यक्ति की सिद्धियाँ लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखने में आते हैं।

अनुयायीगण अपने गुरु की शक्ति के बारे में अनेक तरह के प्रचार-प्रसार द्वारा उनकी प्रतिष्ठा को आँच लगाते हैं। आध्यात्मिक गुरुओं को अपने शिष्यों को कड़ाई से यह चेतावनी देनी चाहिए कि वे ऐसा न करें। लोग ऐसे गुरुओं में कतई विश्वास नहीं करते जिनके अनुयायी उनके बारे में तरह-तरह का प्रचार करते हैं। प्रारम्भ में वे ऐसे गुरुओं के प्रति आकृष्ट हो सकते हैं, किन्तु शीघ्र ही उनका विश्वास टूट जाता है। वे पीछे हट जाते, उनसे सम्बन्ध तोड़ लेते, तथा उनकी आलोचना भी करने लगते हैं। आखिर आम लोग भी समझदार और विवेकी होते हैं। यथार्थ को आप कब तक छिपा सकते हैं? अन्ततः सत्य तो प्रकट होगा ही। मयूरपंख लगाए हुए कौए की पहचान में अधिक विलम्ब नहीं हो सकता।

भारत अद्वैत दर्शन की पवित्र भूमि है। यहाँ दत्तात्रेय, शंकराचार्य एवं वामदेव जैसे महात्मा अवतरित हुए, जिन्होंने जीवन एवं चेतना के एकत्व का उपदेश दिया। पर आज वही भारत सम्प्रदायवादियों से भरा हुआ है। कितनी दयनीय स्थिति है यह! समुद्र के किनारे फैले हुए बालू के कणों को गिनना सरल है, किन्तु आज भारत में प्रचलित सम्प्रदायों की गिनती करना कठिन है। प्रतिदिन कोई-न-कोई मत या सम्प्रदाय कुकुरमुत्ते की तरह उत्पन्न हो रहा है, जो पहले से मौजूद कलह को और अधिक बढ़ा देता है। चारों तरफ निराशाजनक असामंजस्य एवं आपसी फूट का राज्य है। सब ओर मतभेद, मुकदमे, हाथा-पाई, दुष्प्रचार एवं मुठभेड़ का बोलबाला है। सड़कों पर एक गुरु के शिष्य दूसरे गुरु के शिष्यों से लड़ रहे हैं। सर्वत्र शान्ति और सामंजस्य का अभाव है।

चैतन्य महाप्रभु, गुरु नानक और स्वामी दयानन्द, सभी उदारमना एवं उदात्त आत्माएँ थे। उनके सभी उपदेश उत्कृष्ट एवं सार्वभौमिक थे। वे कभी अपना पंथ, मत या सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं चाहते थे। यदि वे आज हमारे बीच होते, तो अपने अनुयायियों के कारनामों पर आँसू बहाते। अनुयायी लोग ही तो गम्भीर गलतियाँ और भारी भूलें करते हैं। उनका हृदय संकुचित तथा मन संकीर्ण होता है। वे मतभेद, परेशानी और दलगत भावना पैदा करते हैं।

एक आध्यात्मिक प्रणेता को कदापि अपने सम्प्रदाय या पंथ की स्थापना नहीं करनी चाहिए। उन्हें दूर-दृष्टि से काम लेना चाहिए। पंथ की स्थापना का तात्पर्य होता है विश्व-शान्ति को भंग करने वाले एक कलह-केन्द्र का निर्माण। ऐसा व्यक्ति देश

और समाज को लाभ की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाता है। हाँ, संकीर्ण के बजाय व्यापक और सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित संस्था की स्थापना अवश्य की जा सकती है। ये सिद्धान्त और विचारधाराएँ ऐसी हों, जिनका दूसरों के सिद्धान्तों से विरोध न हो तथा जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य एवं अनुकरणीय हों।

जड़ भरत, वामदेव एवं सदाशिव ब्राह्मण जैसे लोगों ने परमहंस की तरह जीवन बिताया। उन्होंने आश्रमों की स्थापना नहीं की। उन्होंने न तो कभी मंच से प्रवचन दिया और न ही कोई शिष्य बनाए। तथापि उनका यश पीढ़ी-दर-पीढ़ी उजागर होता चला गया। आज भी लोग उन्हें आदर्श आध्यात्मिक पुरुषों के रूप में स्मरण करते हैं। उन्होंने अपने आदर्श एवं उदात्त जीवनशैली द्वारा लोगों के मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ दी। वे सचमुच महान् आध्यात्मिक विभूतियाँ थे। हिमालय की सुदूर कन्दरा में निवास करने पर भी आत्मज्ञानी पुरुष का स्पन्दन समस्त संसार को शुद्ध करता है। उनका जीवन ही उनकी शिक्षा का मूर्त्त रूप होता है। उनके लिए व्याख्यान या प्रवचन देना आवश्यक नहीं होता। सच्चे गुरु की ऐसी ही महानता होती है!

युवा जिज्ञासुओं को कुछ वर्षों तक एक सद्गुरु के मार्गदर्शन में अवश्य रहना चाहिए। उनमें दास्य भाव होना चाहिए और उन्हें आज्ञापालन एवं विनम्रता की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। यदि वे मनमर्जी करेंगे तो उद्दण्ड और दम्भी हो जाएँगे। आध्यात्मिक मार्ग पर उनकी तनिक भी प्रगति नहीं होगी।

अनेक जिज्ञासु शिकायत करते हैं कि मैं सक्षम गुरु पाने में असमर्थ हूँ। क्या एक रोगी किसी चिकित्सक के परामर्श-कक्ष में प्रवेश करते ही उनकी योग्यता को जान सकता है? अज्ञानी शिष्यगण, जिन्हें तनिक भी आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त नहीं है, तुरंत अपने गुरु को जाँचने-परखने लगते हैं। वे उनकी बाह्य अभिव्यक्ति और रहन-सहन से गलत अनुमान एवं निष्कर्ष निकालते हैं। परमहंसों के तौर-तरीके रहस्यपूर्ण होते हैं। भले ही कन्धे-से-कन्धा मिलाकर आप बारह वर्षों तक उनके साथ रहें, फिर भी आप उनके हृदय एवं ज्ञान की गहराई को शायद ही समझ सकेंगे। ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव तो वास्तव में आन्तरिक अवस्थाएँ होती हैं।

सच्चे गुरु में मुझे पूर्ण विश्वास है। सद्गुरु के प्रति मेरे मन में अत्यधिक श्रद्धा है। सद्गुरु के चरण-कमलों को नमस्कार! मेरा हृदय उनके चरण-कमलों की सतत् सेवा हेतु लालायित रहता है। मेरी मान्यता है कि मन की अशुद्धियों के निष्कासन हेतु गुरु-सेवा से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। मेरा विश्वास है कि अमरत्व के दूसरे किनारे तक पहुँचने के लिए गुरु का सतत् सान्निध्य ही एकमात्र सुरक्षित नौका है।

यह संसार दिव्यज्ञान-संपन्न महात्माओं से भरा रहे, जो मानवता का मार्गदर्शन करते रहें! आप सभी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सन्तों की सेवा करें और उनका आशीर्वाद प्राप्त करें! आप सभी जीवनमुक्त के रूप में प्रकाशित हों!

शिष्यों को निर्देश

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मन से थोड़ा हटकर, अनुभव की एक ऐसी अवस्था होती है, जिसमें आप मनपसन्द वस्तु अथवा व्यक्ति को देख सकते हैं। इसके बाद अपनी चेतना के आन्तरिक तल पर आप उसे यथार्थ रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। परन्तु आप ऐसा केवल तभी कर सकते हैं, जब आपकी चेतना विकसित हो जाए। इस अवस्था में कल्पना की वस्तुएँ बड़ी स्पष्ट होती हैं। आप आँखें बन्द कर, अपने गुरु को इतने स्पष्ट रूप से देख सकते हैं, उनसे बातचीत कर सकते हैं, मानो वे आपके समक्ष ही बैठे हों। इसलिए प्रतिदिन नियमित रूप से एक-आध घण्टा साधना कर अपनी चेतना को अवश्य विकसित कीजिए।

चेतना की दो अवस्थाएँ होती हैं—एक अवस्था में आप यह जानते हैं कि आप क्या कर रहे हैं, जबकि दूसरी अवस्था में आपको इस तरह की कोई जानकारी नहीं रहती। इसमें क्षणिक असन्तुलन आता है, परन्तु यदि आपको गुरु का मार्गदर्शन उपलब्ध हो, तो यह स्थिति जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत यदि आपको गुरु का मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं है तथा असन्तुलन की स्थिति अधिक समय तक बनी रहती है, तो संभव है कि आप पागल हो जायें। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि कोई भी गहन साधना गुरु के आदेश के बिना न करें। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण साधक के लिए प्राथमिक अनिवार्यता है। इसके बाद ही उचित अवसर आने पर गुरु उसे साधना बताएँगे।

यदि गुरु से आपका सम्बन्ध सहज है, तो इसका स्वरूप कुछ भी हो सकता है। तब तो वे आपके गुरु ही नहीं रह जाते, बल्कि माता, पिता, प्रेमी, सखा, यहाँ तक कि आपके बच्चे के समान भी हो सकते हैं। हो सकता है कि गुरु पुरुष हों और आप महिला। परन्तु गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बड़ा स्पष्ट होता है। गुरु शिष्य के प्रति जो कुछ भी करते हैं, उसका उद्देश्य शिष्य की चेतना को प्रभावित करना होता है। इसके अतिरिक्त गुरु का शिष्य बनाने का कोई अन्य प्रयोजन नहीं रहता। परन्तु अनेक शिष्य इस सत्य को नहीं समझ पाते। इसके परिणामस्वरूप उनमें असन्तुलन आ जाता है। कभी तो वे सोचने लगते हैं कि गुरुदेव मुझे बहुत चाहते हैं और कभी यह भी सोचने लगते हैं कि गुरुदेव मेरे प्रति बड़ी उपेक्षा बरतते हैं। परन्तु ये दोनों ही विचार गलत हैं। गुरु कभी किसी को प्यार नहीं करते। वे जो कुछ करते हैं, उसका प्रयोजन शिष्य के मन को उन्नत बनाना होता है।

आप देखते हैं कि दूध में शक्कर मिलाने से उसका गुण बदल जाता है। यदि उबलते पानी में चाय-पत्ती डाल दी जाए तो पानी का गुण बदल जाता है। ठीक इसी प्रकार यदि गुरु आपके मन में समा जाएँ, तो मन के गुणों और ढाँचे में बड़ा परिवर्तन आ जाएगा। यह प्रक्रिया बड़ी सरल है। गुरु इस परिवर्तन को लाने की हजारों युक्तियाँ जानते हैं। वे आपको मंत्र, साधना, प्रवचन, कीर्तन, चिन्तन अथवा अन्य किसी भी तरीके से बदल सकते हैं। साधना केवल तभी प्रारम्भ होती है जब आपके मन में गुरु बसने लगते हैं। गुरु न तो किसी से व्यक्तिगत रूप से जुड़े रहते हैं और न ही किसी शिष्य से प्यार या नफरत करते हैं।

साधक शिष्य के जीवन में एक पल ऐसा आना चाहिए जब वह अपनी चेतना को विकसित करने में सक्षम हो। इसके बाद उसे भौतिक रूप से गुरु की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। तब तो गुरु हमेशा उसके पास ही रहेंगे। यह अवस्था गुरु के भौतिक सान्निध्य की अपेक्षा कहीं बेहतर होती है। यदि आप अपने एकांत के क्षणों में आँखें बन्द कर गुरु के स्वरूप का अन्तर्दर्शन कर सकें, तो गुरु की भौतिक निकटता की अपेक्षा कहीं अधिक संतुष्टि का अनुभव कर सकेंगे।

सर्वप्रथम यह जानिये तथा मानिये कि मैं आपका गुरु हूँ और जीवन में पग-पग पर आपका नियंत्रणकर्ता भी हूँ। यही गुरु का वास्तविक अर्थ भी होता है। हो सकता है कभी-कभी मैं आपसे नाराज हो जाऊँ और धक्के मारकर आश्रम से बाहर निकाल दूँ। आपको सभी बातें स्वीकारनी होंगी। सच्चा शिष्य वही होता है जो हर समय गुरु के नियंत्रण में रहता है।

ऐसे अनेक लोग मिलेंगे जो आध्यात्मिक साधना में बड़ा श्रम करते हैं। उन्हें कुछ अच्छे अनुभव भी होते हैं। परन्तु कुछ समय बाद वे जैसे के तैसे हो जाते हैं, क्योंकि उनके गुरु नहीं होते, वे मनमानी करते हैं और बहुधा निरर्थक बातों में अपना समय बरबाद करते हैं। यदि मैं आपसे न सोने के लिए कहूँ, शांत रहने अथवा

बहस न करने का आदेश दूँ, तो बिना किसी झिझक अथवा उचित-अनुचित का विचार किये आपको उसका पालन करना चाहिए। गुरु के समक्ष शिष्य का अपना कोई व्यक्तित्व न रहे, तभी वे उसकी कुछ सहायता कर सकते हैं।

कठिन परिश्रम कीजिये और जो बातें मैंने आपसे कही हैं, उनका पालन कीजिये। अपनी आन्तरिक चेतना को भी विकसित कीजिये और गुरु से हमेशा डोर जोड़े रखिये; भले ही बाह्य रूप से आप गुरु से कितनी ही दूर अथवा अलग क्यों न दिखलाई पड़ें। इसके लिए निरंतर अभ्यास करना होगा। प्रारम्भ में यह बड़ा अटपटा लगेगा। परन्तु जैसे-जैसे आपकी चेतना विकास के सोपान पार करेगी, आपको यह ठोस यथार्थ लगेगा।

इस चेतना का अनुभव आपको अत्यधिक भय, वासना आदि के क्षणों में होता है। इसका अभ्यास कीजिये, पर एक बात हमेशा याद रखिये कि मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ, वह अंतिम है तथा उसमें तर्क की कोई गुंजाइश नहीं है। यदि समर्पण की इस मन:स्थिति को बनाने के पूर्व ही आप यह अभ्यास करेंगे तो उच्च चेतना की क्षणिक अभिव्यक्ति के अवसरों पर उसे संभालना आपके लिए बड़ा कठिन होगा। आप कहेंगे, 'मैं ऑस्ट्रेलिया जा रहा हूँ' और अगर मैं कहूँ, 'मत जाओ' तो आप उस पर ध्यान ही नहीं देंगे।

इसलिए गुरु के साथ आपका सम्बन्ध कुछ ऐसा हो कि वे जो कुछ कहें, आप उसे अंतिम मानें। इसमें किन्तु-परन्तु, क्यों-कैसे वगैरह न जोड़ें। मेरा 'नहीं' आपके लिए अंतिम 'नहीं' होना चाहिए। अन्यथा उच्च चेतना की अभिव्यक्ति के समय बड़े उपद्रव उठ खड़े होंगे और आप कहीं के नहीं रहेंगे। गुरु का आदेश शिष्य के लिए ईश्वरादेश होना चाहिए। जब तक गुरु के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, उच्च साधना का प्रयास नहीं करना चाहिए। नहीं तो साधक भटक सकता है।

सामान्य जीवन में मेरे और आपके अनुभव भिन्न हो सकते हैं। परन्तु गुरु और शिष्य के सम्बन्धों का स्वरूप आध्यात्मिक होता है। भले ही आप किसी भी पेशे में क्यों न हों, जहाँ भी जाइये, जो भी कीजिये, इस चेतना को हमेशा बनाये रखिये। हो सकता है, मेरे कहे अनुसार करने से आप कुछ छोटी-मोटी गलतियाँ कर बैठें। मान लो, आप रसोई में काम करते हैं। मैं आपसे गेहूँ बाहर निकालने के लिए कहता हूँ। संभव है बारिश आ जाए और ऐसा करने से कुछ गेहूँ नष्ट हो जाए। यह तो भौतिक नुकसान होगा, परन्तु चूँकि आपने मेरी आज्ञा का पालन किया है, आपको इसका आध्यात्मिक लाभ अवश्य मिलेगा।

याद रखिये, गुरु कभी शिष्य का शोषण नहीं करते। जो शिष्य स्वार्थी नहीं होते, वे कभी घाटे में नहीं रहते। भले ही गुरु उनसे कुछ भी माँग ले, क्योंकि ऐसे शिष्यों की चेतना उच्च से उच्चतर विकास की ओर सदैव गतिशील रहती है।

–22 अप्रैल 1981, मुंगेर

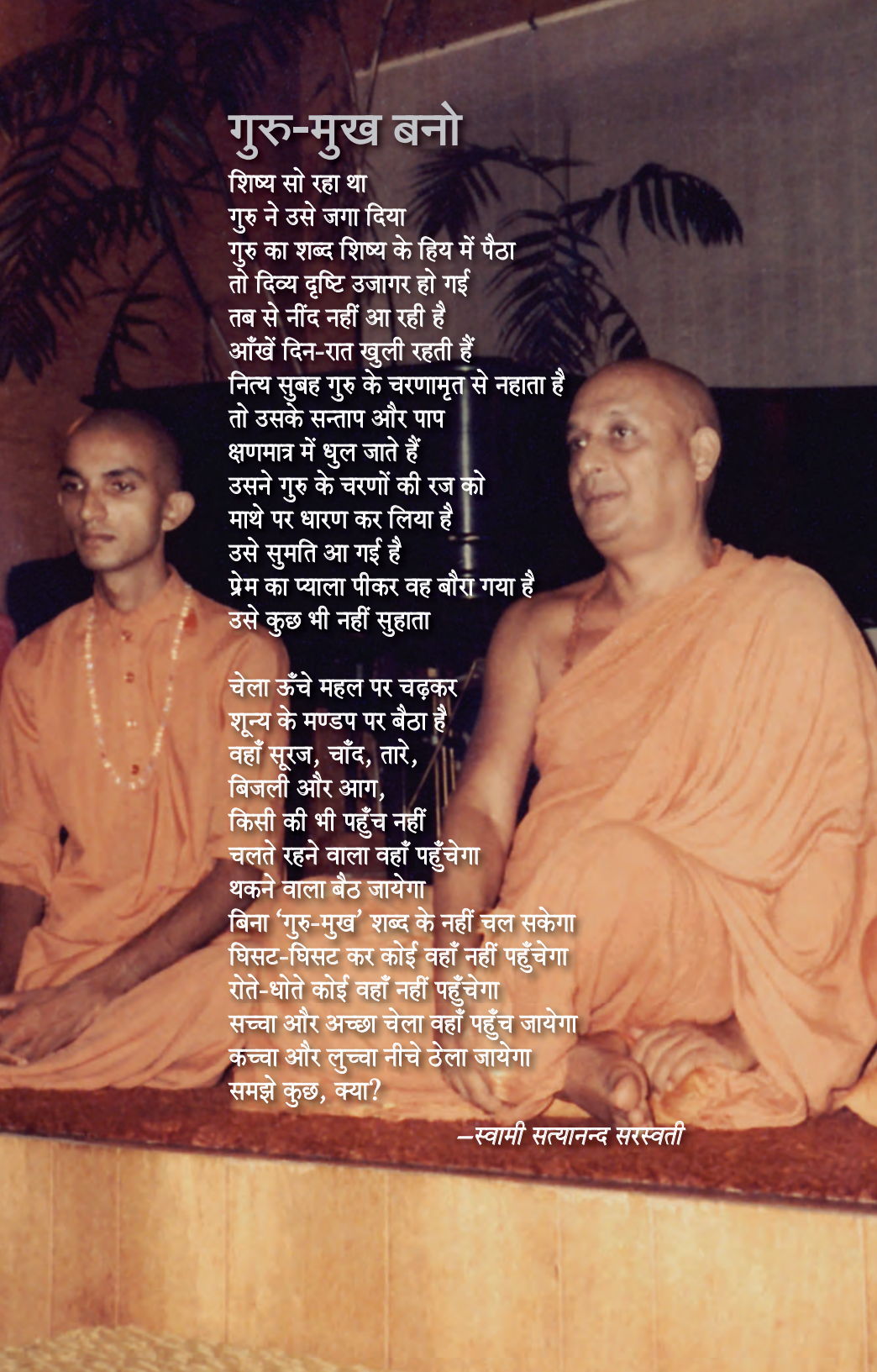

गुरु-मुख बनो

शिष्य सो रहा था
गुरु ने उसे जगा दिया
गुरु का शब्द शिष्य के हिय में पैठा
तो दिव्य दृष्टि उजागर हो गई
तब से नींद नहीं आ रही है
आँखें दिन-रात खुली रहती हैं
नित्य सुबह गुरु के चरणामृत से नहाता है
तो उसके सन्ताप और पाप
क्षणमात्र में धुल जाते हैं
उसने गुरु के चरणों की रज को
माथे पर धारण कर लिया है
उसे सुमति आ गई है
प्रेम का प्याला पीकर वह बौरा गया है
उसे कुछ भी नहीं सुहाता

चेला ऊँचे महल पर चढ़कर
शून्य के मण्डप पर बैठा है
वहाँ सूरज, चाँद, तारे,
बिजली और आग,
किसी की भी पहुँच नहीं
चलते रहने वाला वहाँ पहुँचेगा
थकने वाला बैठ जायेगा
बिना 'गुरु-मुख' शब्द के नहीं चल सकेगा
घिसट-घिसट कर कोई वहाँ नहीं पहुँचेगा
रोते-धोते कोई वहाँ नहीं पहुँचेगा
सच्चा और अच्छा चेला वहाँ पहुँच जायेगा
कच्चा और लुच्चा नीचे ठेला जायेगा
समझे कुछ, क्या?

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शिष्य धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

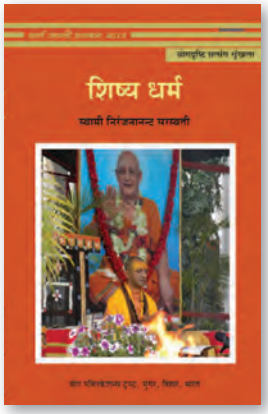

शिष्य के धर्म को पूरी तरह समझने के लिए गुरु-शिष्य सम्बन्ध के आधार को समझना जरूरी है। शरीरधारी गुरु के साथ सबसे पहले भौतिक धरातल पर एक सम्बन्ध स्थापित होता है। यह सम्बन्ध बौद्धिक, भावनात्मक या आध्यात्मिक प्रकृति का हो सकता है।

प्राय: लोग शुरू में बौद्धिक सम्बन्ध ही स्थापित करते हैं। वे किसी गुरु के यहाँ जाते हैं, उनके प्रवचन सुनते हैं, गुरु की बातें उन्हें पसन्द आती हैं और दिमाग में बैठ जाती हैं। 'ये महानुभाव तो बहुत कुछ जानते हैं। ये किसी भी विषय पर प्रवचन दे सकते हैं, हमारे प्रश्नों और शंकाओं का स्पष्ट समाधान कर देते हैं,' ऐसे विचारों के साथ गुरु से बौद्धिक सम्बन्ध की स्थापना होती है। गुरु के स्पष्ट विचार एवं व्याख्यान तुम्हारी बौद्धिक जिज्ञासा को संतुष्ट करते हैं और तुम्हें उनकी ओर आकृष्ट करते हैं।

इसके बाद कुछ लोगों में एक भावनात्मक सम्बन्ध और भावनात्मक निर्भरता पनपती है। गुरु उनके जीवन का अंग तो बन जाते हैं, लेकिन उन्हें अपनी भावनाओं को सम्भालना नहीं आता। उन्हें यह समझ में नहीं आता कि गुरु को अपने जीवन में कौन-सा स्थान दें। इसलिए मन भ्रमित रहता है। कुछ लोग गुरु को पिता मानते हैं, कुछ लोग भाई और कुछ लोग तो अपना पति तक मानते हैं। जैसा भी हो, यह एक सम्बन्ध है, जिसका उनके जीवन में धीरे-धीरे विकास होता है। इस भावनात्मक सम्बन्ध में परावलम्बन रहता है। 'आपने आश्वासन दिया, पर वैसा नहीं हुआ', गुरु के साथ भावनात्मक आसक्ति हो जाने पर मन में इस प्रकार के भाव उठते हैं।

विरले ही लोग गुरु के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उनका सम्बन्ध अलग प्रकार का रहता है। उस सम्बन्ध में आज्ञाकारिता होती है। भावनात्मक सम्बन्ध वाले लोग आज्ञाकारी नहीं होते, वे केवल बोलना जानते हैं। उसी से उनकी भावनात्मक कुण्ठाओं का निकास होता है। लेकिन आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले लोग आज्ञा का पालन करना जानते हैं, और गुरु के प्रति आज्ञाकारिता शिष्य की प्राथमिक योग्यता है।

आज्ञाकारिता का पाठ

मुझे श्री स्वामीजी के साथ एक पुरानी आपबीती याद आ रही है। उस समय श्री स्वामीजी पुराने आश्रम में रहते थे और हम आश्रम में नए-नए आए थे। एक दिन जब वे अपने कमरे से बाहर निकले, तो उनके हाथ में चॉकलेट के कुछ टुकड़े थे। उस जमाने में चॉकलेट एक खास चीज होती थी। मैं साठ के दशक की बात कर रहा हूँ, उस समय भारत में चॉकलेट नहीं मिलती थी। जब विदेशी लोग आश्रम आते थे, तब साथ में चॉकलेट लाते थे और सबसे छोटा होने के नाते सबसे पहले चॉकलेट मुझे मिला करती थी।

श्री स्वामीजी ने मुझसे पूछा, 'मीठा खाना है?' मैंने कहा, 'जी हाँ।' उन्होंने कहा, 'ठीक है। लेकिन एक शर्त पर कि तुम कड़वा भी खा सको।' मैं चौंक गया। सोचने लगा कि कड़वे से उनका क्या मतलब हो सकता है, न जाने कौन-सी कड़वी चीज मुझे देंगे। मैंने झटपट निर्णय लिया और बहादुरी दिखाते हुए कहा, 'मैं तैयार हूँ।' यह एक बहुत बड़ी गलती साबित हुई! श्री स्वामीजी ने दूसरा हाथ खोला तो उसमें दो बड़ी-बड़ी हरी मिर्चियाँ थीं। उन्होंने कहा, 'अगर तुम चॉकलेट चाहते हो तो तुम्हें मिर्ची का तीखापन भी झेलना पड़ेगा। मिर्ची के तीखेपन में भी तुम्हें वैसा ही आनन्द आना चाहिए जैसा चॉकलेट के मीठेपन में।'

मैंने उनके हाथ से मिर्चियाँ लीं और मुँह में डाल लीं। फिर क्या था, उन्हें चबाता गया और रोता गया, चबाता गया और रोता गया, मानो मुँह में आग लगी हो! मिर्ची खत्म करने के बाद उन्होंने मुझे चॉकलेट दी। एक बहुत ही सरल और साधारण तरीके से उन्होंने मुझे एक बहुत बड़ा पाठ सिखला दिया। आज भी जब चॉकलेट मेरे सामने होती है तब मुझे वे दो मिर्चियाँ दिखलायी देती हैं। इसी तरह

से मेरा प्रशिक्षण हुआ है और यह सम्भव हुआ आज्ञाकारिता की वजह से। अगर आज्ञाकारिता नहीं होती तो मैंने शायद कह दिया होता, 'नहीं, मुझे मिर्चियाँ नहीं, सिर्फ चॉकलेट चाहिए।'

शिष्य के लिए आज्ञाकारिता एक अनिवार्य गुण है। जब गुरु शिष्य के अहंकार-निर्मूलन का प्रयास करते हैं, तब कई बार शिष्य की ओर से भीषण प्रतिक्रिया होती है। अहंकार इतनी आसानी से मिटना नहीं चाहता। अगर कोई तुम्हारे पास आकर कहे, 'मैं तुम्हारा सिर काटने आया हूँ,' और ऐसा कहकर एक बड़ा-सा छुरा निकाले तो क्या तुम उसे ऐसा करने दोगे? हरगिज़ नहीं। उसी तरह अगर गुरु भी छुरा निकालकर कहते हैं, 'मैं तुम्हारे अहंकार को मिटाने जा रहा हूँ,' तो तुम ऐसा होने नहीं देते। अगर तुम गुरु को अपने पर यह शल्य-क्रिया करने की अनुमति नहीं दे सकते, तो तुम शिष्य कहलाने लायक नहीं। इसी मोड़ पर आज्ञाकारिता की उपयोगिता चरितार्थ होती है। गुरु कहते हैं, 'शीश झुकाओ।' तुम जवाब देते हो, 'जी, बहुत अच्छा।' वे कहते हैं, 'मैं इसे काटने जा रहा हूँ।' तुम कहते हो, 'यह आपका ही तो है, जैसा चाहे कीजिये।' एक सामान्य कथन, एक सामान्य भाव तुम्हारे संकल्प को दर्शाता है। तुम चाहो तो यह भी कह सकते हो, 'नहीं, आप मेरा सिर नहीं काट सकते।' इस छोटे-से वाक्य से पूरा संकल्प बदल जाता है। आज्ञाकारिता के दर्पण में ही शिष्य का संकल्प अपने वास्तविक रूप में दिखलायी देता है।

स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि गुरु के प्रति आज्ञाकारिता गुरु-आराधना से भी श्रेष्ठ है। वे कहते थे, 'गुरु की आराधना उनके पैर धोकर मत करो, उन्हें तिलक लगाकर और माला पहनाकर मत करो। अगर वास्तव में शिष्य रूप में तुम गुरु की आराधना करना चाहते हो तो उनकी आज्ञा का पालन करो। वही सबसे बड़ी आराधना है।'

आज्ञा का पालन तत्परतापूर्वक होना चाहिए। शिष्य को चुपचाप बैठे नहीं रहना चाहिए कि अब गुरुजी मुझे कुछ बोलेंगे। जो व्यक्ति निठल्ला बैठकर आदेश की प्रतीक्षा करता रहता है, उस व्यक्ति का मन शैतान का घर हो जाता है। और एक बार मन शैतान का घर हो गया, तब उस पर गुरु के आदेश का कोई असर नहीं पड़ता। इसलिए गुरु के आदेश के प्रति तत्परता होनी चाहिए और केवल तत्परता ही नहीं, गुरु के आदेशों और आवश्यकताओं का पूर्वानुमान होना चाहिए। 'गुरुजी अब यह कहने वाले हैं,' ऐसा अनुमान लगाकर उनके आदेश की पूर्ति पहले ही कर देनी चाहिए। उनको कहने की आवश्यकता न पड़े। इसके लिए शिष्य को सदैव सजग और पहले से तैयार रहना चाहिए। आज्ञाकारिता और तत्परता, ये दो गुण हर शिष्य के लिए गुरु के साथ एक अंतरंग सम्बन्ध जोड़ने हेतु आवश्यक हैं।

अपने लिए स्वयं जिम्मेदार बनो

गुरु के साथ उचित सम्बन्ध बनाने के लिए यह भी जरूरी है कि शिष्य यह सोचकर अपनी समस्याओं के प्रति उदासीन न रहे कि गुरु ही उन समस्याओं का समाधान करेंगे। जो शिष्य यही पूछता रहता है, 'अब क्या करूँ?' वह सबसे निम्न श्रेणी का है। भगवान ने अपना निर्णय स्वयं लेने के लिए तुम्हें पर्याप्त बुद्धि और समझ दी है। अगर गुरु के पास जाते भी हो तो अपनी समस्या लेकर नहीं, बल्कि समस्याओं का समाधान लेकर जाओ। उनसे कहो, 'स्वामीजी, मेरी यह समस्या है और मैंने ये पाँच समाधान खोजे हैं। कौन-सा सर्वोत्तम है? किसका प्रयोग करूँ?' तब गुरु कह देंगे, 'तीसरा।' तुम उस निर्देश को स्वीकार कर लेते हो और उसका पालन करते हो।

गुरु केवल तुम्हारे खुद के निर्णय का अनुमोदन कर रहे हैं, क्योंकि वे चाहते हैं कि तुम अपने जीवन के लिए खुद जिम्मेदार बनो। वे यह कभी नहीं चाहेंगे कि तुम उनसे पूछते रहो कि कब खाएँ और कब नहीं, कब स्नान करें और कब नहीं, कब जप करें और कब नहीं। गुरु अपने हर शिष्य को स्वावलम्बी देखना चाहते हैं। तुम्हें स्वयं समाधान खोजने का प्रयास करना है, तुम्हें इस बात का पूर्वानुमान करना है कि गुरु तुमसे क्या अपेक्षा रखते हैं। इसी विधि से गुरु के साथ एक अंतरंग सम्बन्ध स्थापित होता है।

धर्म का पालन

गुरु की अनुपस्थिति में शिष्य को अपने धर्म का अक्षरश: पालन करना है। अगर गुरु शारीरिक रूप से उपस्थित हैं तो वे तुम्हें यह बता सकते हैं, 'तुम गलत दिशा में जा रहे हो, लौट आओ,' लेकिन उनकी अनुपस्थिति में धर्म ही तुम्हें सही मार्ग पर बनाए रखता है, कोई व्यक्ति नहीं। इस धर्म में स्थापित होने के लिए जीवन में एक अनुशासन और एक दिनचर्या होनी चाहिए।

समाज में रहने वाले गृहस्थ शिष्यों की एक निश्चित दिनचर्या होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, सुबह उठते ही ग्यारह बार महामृत्युंजय मंत्र एवं गायत्री मंत्र और तीन बार दुर्गा जी के बत्तीस नामों का पाठ करना चाहिए। प्रत्येक शनिवार को महामृत्युंजय मंत्र का पाठ, प्रत्येक पूर्णिमा को सुन्दरकाण्ड का पाठ, सोने से पहले ध्यान का अभ्यास, आसन-प्राणायाम का अभ्यास, सेवा, स्वाध्याय और साधना—ये सारे अभ्यास हमारी दिनचर्या का अंग बन जाने चाहिए।

अगर हम इन अभ्यासों को अपने घरेलु जीवन का अंग बना सकें, तो आस-पास के लोग अवश्य प्रभावित होंगे। अगर परिवार के सभी लोग एक लक्ष्य और प्रयोजन को लेकर इसमें शामिल हो सकें, तो जो ऊर्जा हम अपने मंत्र-पाठ, भजन-कीर्तन और पूजा-अनुष्ठान द्वारा उत्पन्न करेंगे, वह हर एक के जीवन में शान्ति लाएगी, हर एक के जीवन में एक नयी प्रेरणा का संचार करेगी।

इसके लिए एक वातावरण तैयार करना होगा, एक अनुशासन को लाना होगा। अपने दैनिक जीवन में आध्यात्मिक अभ्यासों का समायोजन करना होगा। ऐसा नहीं कि घर में पूरी तरह सांसारिक जीवन बिताओ और आश्रम में आते ही गेरू वस्त्र पहनकर कहो, 'अब मैं आपके आदेशानुसार सब कुछ करने के लिए तत्पर हूँ, मैं कर्म संन्यासी जो हूँ।' जीवन का सुनियोजन, दिनचर्या की फाइन-ट्यूनिंग अपने घरेलू वातावरण में भी करनी होगी। तब ही एक शिष्य गृहस्थ-आश्रम में रहते हुए भी अध्यात्म पथ पर गुरु के निर्देशानुसार आगे बढ़ सकता है। अगर वह ऐसा कर पाता है, तो जीवन की सभी कामनाओं, सभी अभावों को पूरा करते हुए सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। इस तरह संसार में रहते हुए भी वह अपने शिष्यत्व को सिद्ध कर सकता है।

पंच-सकार साधना

जो शिष्य गुरु के आश्रम में रहते हैं, उनके लिए विशेष साधना होती है। जिस तरह तंत्र शास्त्र में पंच-मकार साधना है, उसी प्रकार आश्रमों में जिज्ञासुओं और मुमुक्षुओं के लिए पंच-सकार साधना का निर्देश दिया गया है। पंच-सकार में पहली साधना है समर्पण। जिस गुरु के साथ हम हैं, उनके प्रति अपने को पूर्णतया समर्पित कर देना। केवल वैचारिक समर्पण नहीं कि आज से मैंने अपने आप को समर्पित कर दिया है, बल्कि रोज देखना चाहिए कि कल मेरे समर्पण में कहीं कोई कमी तो नहीं रह गयी जिसको मैं आज दूर कर सकता हूँ। समर्पण का अवलोकन भी रोज

करना है। मन को टटोलकर एक बार देखो कि कल के कर्मों और विचारों में मेरा समर्पण पूरा था या कहीं पर उसमें कमी थी, बाधा थी।

उसके बाद है साधना, अर्थात् वह पुरुषार्थ जो आश्रम नियम और परम्परा के अनुसार अथवा गुरु निर्देश के अनुसार हमको करने के लिए कहा जाता है।

पंच-सकार का तीसरा अंग है सेवा, *'नाहं कर्त्ता हरिः कर्त्ता, हरिः कर्त्ता हि केवलम्'* की भावना से युक्त होकर किया गया कर्म। सेवा का मतलब होता है, मैं अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के हित और उत्थान के लिए कर्म कर रहा हूँ। सेवा-भाव से किये गये कर्मों द्वारा चित्त शुद्ध और पवित्र बनता है।

हमारे गुरुजी अपने ऋषिकेश जीवन की कहानी सुनाते थे कि एक बार स्वामी चिदानन्द जी और उन्होंने सड़क पर एक कुष्ठ रोगी को देखा और उसे उठाकर आश्रम में ले आये। स्वामी शिवानन्द जी ने उनसे कहा, 'यह रोगी नहीं, साक्षात् ब्रह्म है, ईश्वर है, जो इस समय पीड़ा में है। इसकी अच्छे से सेवा करो।' स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी चिदानन्द जी रोज उस बीमार व्यक्ति की सेवा करते, उसको नहलाते, उसके घावों को पोंछते, उन पर दवाई और मलहम-पट्टी लगाते। एक दिन कोई घाव ज्यादा जोर से दब गया तो वह मरीज दर्द के मारे कराह उठा। गुस्से में आकर उसने उन्हें गाली दी कि तुम लोग कैसी सेवा करते हो और स्वामीजी पर थूक दिया।

श्री स्वामीजी तमतमा गए। क्षत्रिय जाति और कोई उनके मुँह पर थूक दे, सहन नहीं हुआ। वे सीधे स्वामी शिवानन्द जी के पास गये और कहा, 'आप खुद ही सम्भालिये अपने ईश्वर को। जिसे तमीज तक नहीं है, मैं उसकी सेवा करने वाला नहीं।' स्वामी शिवानन्द जी ने शान्त स्वर में कहा, 'उसे तमीज नहीं, कोई बात नहीं। लेकिन तुम्हें तो तमीज है न। तुम अपना काम करते रहो।' ऐसा कहकर स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें वापस मरीज के पास भेज दिया।

श्री स्वामीजी बतलाते हैं कि स्वामी शिवानन्द जी बीच-बीच में उनको ऐसे निर्देश या संकेत दिया करते थे जिनसे उनकी आँखें खुल जाती थीं। उन्हें मालूम चल जाता था कि मैं यहाँ पर गलती कर बैठा हूँ और तुरंत उस गलती को ठीक करने के लिए वे तत्पर रहते थे। यह है सेवा।

चौथी साधना है सत्संग। शिष्य सत्संग के माध्यम से अपने विचारों और भावनाओं की फाइन-ट्यूनिंग करता है। वह नये विचारों को ग्रहण करता है, अपने आध्यात्मिक लक्ष्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। रास्ते में कहाँ-कहाँ पर अवरोध हो सकते हैं, कहाँ पर अपनी गाड़ी को धीमा करना है और कहाँ पर तेज रफ्तार से ले जाना है, इन सबकी जानकारी मिलती है। और बहुत बार जब हमारी गाड़ी पटरी से उतर जाती है तब सत्संग के द्वारा हम उसे दुबारा पटरी पर ले आते हैं।

पाँचवीं साधना है स्वाध्याय। स्वाध्याय का मतलब पोथी पढ़ना नहीं, बल्कि इसका मतलब स्वयं का अध्ययन, स्वयं की जानकारी प्राप्त करना। इसके लिए हमेशा सजग और सचेत द्रष्टा का भाव रखना पड़ता है। और योग का यह मूल सूत्र भी है कि द्रष्टा भाव को अपनाकर तुम भोगी से योगी बनो। योगी भोक्ता नहीं, द्रष्टा होता है। वह निरंतर देखता है। स्वाध्याय में स्वयं का द्रष्टा बनना पड़ता है, स्वयं से प्रश्न करना पड़ता है, 'इस विषय को मैंने समझा या नहीं, मेरा व्यवहार उचित था या अनुचित, उसमें कहाँ पर दोष है, मैंने कहाँ पर गलती की है?' इस प्रकार अपने आप को देखकर अपनी गलतियों को ठीक करना पड़ता है।

ये पंच-सकार–समर्पण, साधना, सेवा, स्वाध्याय और सत्संग, आश्रम में रहने वाले शिष्य की साधना बनते हैं। मैं यहाँ पर संन्यासी और गृहस्थ शिष्य में अन्तर नहीं कर रहा हूँ। आश्रम में रहने वाले शिष्य की बात बोल रहा हूँ, चाहे वह कोई भी हो, चाहे जिस रंग का भी वस्त्र पहनता हो। ये नियम सभी पर लागू होते हैं। हाँ, जब संन्यासियों की बात करूँगा, तब फिर उनके लिए संन्यास धर्म अलग है। मैं यहाँ पर केवल शिष्य धर्म की बात कर रहा हूँ।

अपने शिष्यों के प्रति स्वामी शिवानन्द जी के उद्‌गार

स्वामी शिवानन्द जी ने अपने लेखों में एक जगह अपने शिष्यों के बारे में कहा है, जो मुझे एक अनुपम विवरण लगता है। सामान्यतया चेले गुरु की स्तुति करते हैं, लेकिन यहाँ स्वामी शिवानन्द जी अपने शिष्यों की प्रशंसा कर रहे हैं, उनके प्रयासों और उपलब्धियों का गुणगान कर रहे हैं और यह उद्धरण सचमुच बहुत प्रेरणास्पद है। शिष्यों की प्रशंसा इस बात को दर्शाती है कि स्वामी शिवानन्द जी के शिष्यों ने शिष्यत्व की कला में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। जो शिष्यत्व को सिद्ध कर लेते हैं, वे अपने गुरु की शक्ति के ट्रांसमिटर बन जाते हैं। स्वामी शिवानन्द जी का अपने शिष्यों के बारे में यह कहना है–

'मेरा शिष्य उत्तम गुणों से युक्त है। वह भद्र, सभ्य और कोमल है। वह अपार करुणा से युक्त है, वह कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारता। वह केवल देना जानता है। उसका हृदय विशाल है। वह सभी के साथ हिल-मिल कर रहता है और सभी से प्रेम करता है। वह हमेशा ईश्वराभिमुख होता है, चलते-फिरते वह ईश्वर का स्मरण और कीर्तन करता रहता है। वह आसन, प्राणायाम, जप और ध्यान का अभ्यास करता है। वह सेवा में अत्यंत निपुण है। वह समग्र-योग का अभ्यास करता है। उसके विचार उसके वश में रहते हैं।'

अब कौन गुरु यह कह सकता है कि उसके शिष्य मनोनियंत्रण में सक्षम हैं? केवल स्वामी शिवानन्द जी। और उनके शिष्यों का स्तर इतना ऊँचा था कि वास्तव में उनमें यह क्षमता थी। स्वामी शिवानन्द जी आगे कहते हैं–

'वह एक व्यावहारिक वेदान्ती है। वह खाना भी बना सकता है, प्रूफ भी पढ़ सकता है, टाइपिंग भी कर सकता है, नर्सिंग भी कर सकता है, प्रवचन भी दे सकता है, लेखक भी है, कक्षा भी ले सकता है, आध्यात्मिक शिक्षा का प्रचार भी करता है। फिर भी सहज, सरल और विनम्र है। वह गरीबों की प्रेम से सेवा करता है। सभी धर्मों के प्रति उसकी निष्ठा और आस्था है, वह सभी का सम्मान करता है। कम बोलता है, लेकिन हमेशा क्रियाशील और कार्यरत रहता है। कर्म उसके लिए उपासना है और सेवा की भावना उसमें कूट-कूटकर भरी है। वह भक्त है, वह योगी है, वह ज्ञानी है।'

मानव इतिहास में किसी गुरु की अपने शिष्यों के प्रति ऐसी पहली श्रद्धांजलि है। इससे हमें पता चलता है कि श्री स्वामीजी में जो संकल्पशक्ति, श्रद्धा, विश्वास, गुरु-भक्ति और समर्पण का भाव हमने देखा है, वह शिष्यत्व को सिद्ध कर लेने का परिणाम है। उनका लक्ष्य और साधना हमेशा एक ही थी—शिष्यत्व को सिद्ध करना, और उन्होंने कभी किसी बाहरी प्रभाव को अपने मार्ग का अवरोध नहीं बनने दिया।

सर्वोच्च साधना

शिष्य धर्म का पालन करना, उसे सिद्ध करना, यही सर्वोच्च साधना है। आसन-प्राणायाम, जप-ध्यान, क्रिया-कुण्डलिनी योग सीखना आसान है, कुण्डलिनी को जगाना भी सरल है। लेकिन शिष्य धर्म को निभाना और शिष्य का जीवन जीना बहुत कठिन है।

मैंने बहुत-से स्थानों की यात्रा की है और अनेक ऐसे लोगों से मिला भी हूँ जो अपने आपको गुरु मानते हैं। उन तथाकथित गुरुओं के लिए शिष्यत्व गुरुत्व की मंजिल तक पहुँचने के लिए, गुरु पद पर आसीन होने के लिए एक साधन मात्र था। ऐसे लोग दिग्भ्रमित हैं, क्योंकि गुरुत्व नाम की कोई चीज नहीं होती। केवल शिष्यत्व होता है और शिष्यत्व में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। तुम जितने अच्छे शिष्य बनते हो, उतने ही अच्छे ट्रांसमिटर भी बनते हो, और चूँकि तुम एक अच्छे ट्रांसमिटर बन गए हो, इसलिए तुम गुरु भी बनते हो।

शिष्य गुरु की शक्ति का ट्रांसमिटर, गुरु की ऊर्जा का संचारक होता है। विद्युत् शक्ति के संचार के लिए यह जरूरी है कि बिजली की तार कार्बन से मुक्त रहे। अगर तारों पर कार्बन जमा रहेगा तो बत्तियाँ नहीं जलेंगी। इसी प्रकार शिष्यत्व का प्रयोजन हमारी तारों पर जमे कार्बन को हटाकर उन्हें साफ रखना है, ताकि हमारे जीवन में दैवी कृपा का प्रवाह सतत् और निर्विघ्न रूप से होता रहे, और संक्षेप में यही शिष्य धर्म है।

—'शिष्य धर्म' से उद्धृत

गुरु-कृपा

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

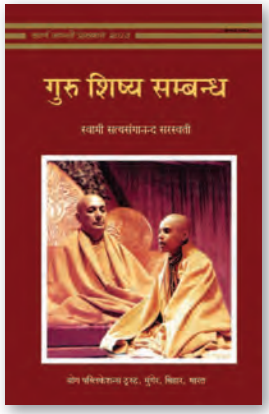

गुरु-कृपा एक ऐसी चीज है जिसे समझना सर्वाधिक कठिन है तथा उसकी विवेचना करना तो उससे भी मुश्किल। यह मात्र उन्हीं लोगों के लिये एक वास्तविकता है जो इसके प्रति ग्रहणशील हैं। भारत में शिष्य के जीवन में गुरु-कृपा के महत्त्व पर जोर देने के लिये प्राय: एक कहावत का प्रयोग होता है, 'गुरु-कृपा हि केवलम्'। इसका अर्थ यह है कि गुरु-कृपा ही शिष्य को मुक्त कर सकती है।

एक शिष्य, जिज्ञासु या साधक को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि एक बार योग की किसी भी पद्धति—कर्म योग, ज्ञान योग, हठ योग या भक्ति योग में दीक्षित हो जाने के बाद उसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सबसे कठिन कार्य अपने मन पर नियन्त्रण प्राप्त करना है। इस मार्ग पर मन सबसे बड़ी बाधा है, जिसका सामना प्राय: सभी शिष्यों को करना पड़ता है। मन के उपद्रवों का मुकाबला करने में उन्हें कुछ समय के लिये सफलता मिल सकती है, किन्तु देर-सबेर वे अधिक शक्ति के साथ पुन: उनके सामने आ जाते हैं। ऐसा होने पर सजग एवं सतर्क शिष्य भी असन्तुलित होकर अपना नियन्त्रण खो सकता है। ऐसा जिज्ञासु, जिसका लक्ष्य अभी भी अनिश्चित है, पूर्णत: चकनाचूर हो सकता है।

मन के स्वरूप, विशेषकर उसके नकारात्मक पहलुओं, जैसे, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, वासना आदि को नियन्त्रित करना प्राय: असम्भव है। वे सभी दिशाओं से मन पर हमला करते हैं। मनुष्य के लिये यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वह उनके असली रूपों को नहीं पहचान सकता तथा उनका शिकार हो जाता है। यह एक बड़ी बाधा है। आध्यात्मिक प्रगति हेतु व्यक्ति को उस पर विजय प्राप्त करने का उपाय ढूँढ़ना ही होगा। उससे कोई भी निरापद नहीं है। कभी-न-कभी हम सभी उसकी पकड़ में आ जाते हैं। सच्चा और समर्पित शिष्य भी मन को उद्वेलित करने वाले आँधी-तूफानों से प्रभावित हो जाता है।

कभी-कभी हम मन के आक्रमणों को थोड़े समय के लिये टालने में सक्षम हो जाते हैं, किन्तु यदि परिस्थिति का सतर्कतापूर्वक विश्लेषण किया जाय तो हम पायेंगे कि हम सिर्फ अपने मानसिक आघातों को किसी प्रकार दबाने में सफल हुए हैं। वास्तव में वे मन के पीछे कहीं छुपे रहते हैं। एक छोटी-सी चिंगारी भी उन्हें

फिर से प्रज्वलित करने के लिये पर्याप्त होती है। यदि हम उन आघातों को बार-बार दबाते रहे हैं तो वे शारीरिक बीमारियों के रूप में प्रकट हो सकते हैं।

प्रश्न यही है कि हम मन का मुकाबला कैसे करें। गुरु-कृपा ही हमें मन की दासता से मुक्त कर सकती है। गुरु ही हमें शक्ति और धैर्य दे सकते हैं, जिनके बल पर हम अपने मन के आघातों-प्रतिघातों का मुकाबला कर सकते हैं। उनकी कृपा ही कठिनतम परीक्षाओं में हमारी सहायता करती है। इसके बिना हम पिस जायेंगे, टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। उनकी सहायता से ही हम एक बार पुन: सिर उठाकर आध्यात्मिक मार्ग पर चल सकते हैं।

किन्तु गुरु की कृपा सहजता से प्राप्त नहीं होती। इसे प्राप्त करने के लिये हमें पूर्ण निष्कपट एवं समर्पित होना होगा। हमें शरीर, मन और आत्मा से उनका हो जाना होगा। ऐसा होने पर जब भी हमारे बाह्य एवं आन्तरिक जीवन में कठिनाइयाँ आयेंगी तो वे हमारी सहायता हेतु प्रस्तुत होंगे, अन्यथा नहीं। गुरु अपनी कृपा कदापि प्रदान नहीं करेंगे यदि हम उसे ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि शिष्य का अपना मन न हो। गुरु सोचते हैं और शिष्य कार्य करता है। वह गुरु के विचारों की विवेचना नहीं करता। वह उन्हें अपना ही विचार मानकर स्वीकार करता है। ऐसा ही शिष्य गुरु की वास्तविक कृपा प्राप्त कर सकता है।

हमारे गुरु-कृपा के अयोग्य होने के बावजूद कुछ कठिनाइयों में वे कभी-कभी हमारी सहायता करते हैं ताकि थोड़ी मात्रा में वे दूर हो सकें। यह भी उनकी कृपा ही है, किन्तु पूर्ण कृपा नहीं। उनकी पूर्ण कृपा तो वह है जो हमारे विकास को रोकने वाले बन्धनों से हमें मुक्त करती है। हमें उसी कृपा की आकांक्षा करनी चाहिये

CASIO

तथा उसे ग्रहण करने हेतु स्वयं को तैयार करना चाहिये। किन्तु वह कृपा तो सिर्फ उसे मिलती है जो आकांक्षारहित होता है।

हम प्राय: गुरु के पास अनेक इच्छाओं-आकांक्षाओं से युक्त होकर जाते हैं। इनमें से कुछ तो स्पष्ट होती हैं और कुछ गुप्त। वे स्थूल या राजसिक हो सकती हैं, जैसे, धन, नाम, यश, उत्तम स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता की प्राप्ति, या वे अधिक सूक्ष्म या सात्त्विक भी हो सकती है, जैसे, आत्मज्ञान, साधना में प्रगति, मानसिक शक्तियों एवं सिद्धियों की प्राप्ति। ये इच्छाएँ-आकांक्षाएँ जैसी भी हों, हमें उन्हें निर्मूल करने हेतु निश्चित रूप से प्रयास करना चाहिये। तभी गुरु हमें बाँह पकड़कर उठाएँगे तथा आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर साथ ले चलेंगे।

गुरु शिष्य पर प्राय: अनुग्रह की वर्षा करते हैं, किन्तु शिष्य के पास वैसी आँखें नहीं होतीं कि वह उसे देख सके। गुरु की कृपा अनेक रूपों में प्रकट हो सकती है। यह मधुर एवं प्रिय अथवा कठोर एवं अप्रिय भी हो सकती है। अधिकतर शिष्य विश्वास करते हैं कि जब गुरु मधुर शब्दों का उपयोग करते हैं तब वे आशीर्वाद दे रहे होते हैं। इसलिए जब वे अधिक सुखद एवं आकर्षक मालूम पड़ें तो समझना चाहिये कि वे अधिक कृपा प्रदान कर रहे हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि ऐसे विचार सत्य हों। कभी-कभी गुरु-कृपा अति अप्रिय हो सकती है।

गुरु उस बढ़ई के समान होते हैं जो एक लकड़ी के टुकड़े को निर्दयतापूर्वक काट-छाँटकर एक निश्चित स्वरूप देता है। कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही बढ़ई के सामने एक स्पष्ट चित्र रहता है कि उसे क्या बनाना है। इसी प्रकार गुरु का लक्ष्य भी स्पष्ट होता है। उसकी पूर्ति के लिये वे शिष्य के अहंकार की काट-छाँट करते हैं। इस कार्य को वे निर्दयतापूर्वक तब तक करते रहते हैं जब तक कि शिष्य वैसा नहीं बन जाता जैसा कि वे उसे बनाना चाहते हैं। बढ़ई लकड़ी को एक उपयोगी, उद्देश्यपूर्ण एवं सुन्दर वस्तु के रूप में परिणत कर देता है। इसी प्रकार गुरु शिष्य को एक मुक्त प्राणी के रूप में परिवर्तित कर देते हैं ताकि वह बहुतों का मार्गदर्शक प्रकाश बन सके। किन्तु यह तभी हो सकता है जब शिष्य लकड़ी के टुकड़े के समान शान्त एवं अहंकार-रहित हो जाये ताकि गुरु को उसे पूर्ण रूप से बदलने का अवसर मिल सके।

गुरु को समझना आसान बात नहीं है। उनमें हमारे व्यक्तित्व की गहराई में प्रवेश करने तथा हम किस लायक हैं यह निर्णय करने की क्षमता होती है। वे हमारी मजबूतियों एवं कमजोरियों को मापने में सक्षम होते हैं। हमें अपनी सीमाओं से अवगत कराने हेतु वे कठोरतम तरीकों का उपयोग कर सकते हैं। यह भी उनकी कृपा ही है। यदि किसी शिष्य ने इस बात का अनुभव नहीं किया है तो इसका तात्पर्य यह है कि वास्तव में वह गुरु को नहीं समझ सका है।

गुरु की कृपा समझने तथा प्राप्त करने के लिये शिष्य को सच्चाई एवं समर्पण का भाव लेकर उनके पास जाना होगा। उसे जो कुछ मिलेगा उसे नम्रतापूर्वक

स्वीकार करना होगा तथा गुरु से एकत्व स्थापित करने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना होगा। इस विषय पर स्वामी सत्यानन्द जी के विचारों को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा। उन्होंने लिखा है, 'ऐसा शिष्य विरला ही होता है जिसे गुरु-कृपा प्राप्त है। मैं प्राय: आश्चर्य करता हूँ कि मुझे स्वामी शिवानन्द जी ने क्यों चुना। मैं सोचता हूँ कि इसका सिर्फ एक कारण हो सकता है। मैं जब तक उनके सान्निध्य में रहा, एक भी क्षण या विषय ऐसा नहीं था जहाँ उनके साथ मेरा पूर्ण तादात्म्य न रहा हो। मैं सर्वदा उत्साहपूर्वक उनका अनुकरण करता था। मैं उनके प्रत्येक शब्द तथा अभिव्यक्ति पर ध्यान देता था। मैं उनके जीवन की प्रत्येक गतिविधि का अवलोकन करता था। उनके साधारण कार्य भी मेरे लिये शिक्षा के स्रोत थे। अनेक अवसरों पर मैं बिल्कुल ठीक-ठीक जान जाता था कि वे क्या सोच रहे हैं। कुछ अन्य अवसरों पर मैं यह भविष्यवाणी कर सकता था कि वे क्या करने जा रहे हैं। गुरु के क्रियाशील होने के पूर्व ही शिष्य को उनके विचारों को समझ लेना चाहिये। गुरु और शिष्य के बीच इस प्रकार का एकत्व स्थापित होना ही चाहिये। ऐसा होने पर उनकी कृपा स्वत: प्रवाहित होने लगती है। अत: वर्षों पूर्व मैं एक निष्कर्ष पर पहुँचा—अपने गुरु के साथ एकत्व स्थापित करो, उनके साथ एकाकार हो जाओ, वैसे ही जैसे चीनी दूध में घुलती है। गुरु और शिष्य पूर्णत: एक हो जाते हैं, उनका भिन्न अस्तित्व समाप्त हो जाता है। दूध चीनीमय एवं चीनी दूधमय हो जाती है। वे एक-दूसरे की विशेषताओं को अपना लेते हैं। इस प्रकार का एकत्व स्थापित करना ही होगा। और तब गुरु-कृपा सतत्, निरन्तर उपलब्ध होती रहेगी।'

– 'गुरु शिष्य सम्बन्ध' से उद्धृत

सर्वोत्तम शिष्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ग्यारह साल पहले एक कुत्ता मेरे पास आया, जो आज मेरे मन में, मेरी स्मृति में एकमात्र शिष्य के रूप में आता है। सच पूछो तो उसके अलावा मैं किसी अन्य को अब याद नहीं करता। मैं भोले को इसलिए याद करता हूँ कि वैसा शिष्य मेरा अन्य कोई कभी न था। वह शिष्यत्व का प्रतीक था, जैसा हर शिष्य को होना चाहिए। उसे दिन-रात, एक घण्टे के साठ मिनट, हर मिनट के साठ सैकण्ड, सदैव मेरा ख्याल रहता था। वह एक क्षण भी मेरा ख्याल नहीं छोड़ता था। जब मैं शौचालय या स्नानागार में जाता तो वह वहाँ भी मेरे साथ जाता। रात में जब मैं सोने जाता तो वह बीच-बीच में सूँघकर यह निश्चित कर लेता कि मैं ठीक-ठाक हूँ या नहीं। वह कभी मुझे अकेले नहीं छोड़ता था, वह मुझ से अलग रहना ही नहीं चाहता था। इसलिए मैं भोले को सर्वोत्तम शिष्य के रूप में याद करता हूँ। शिष्य या भक्त को हर क्षण अपने गुरु या इष्ट का इसी प्रकार ध्यान करना चाहिए।

मैंने भी उसकी बड़ी सेवा की। मैंने उसके लिए आश्रम के सारे नियमों को तोड़ डाला। वह तो शाकाहारी था नहीं। वह दाल-भात बिल्कुल पसंद नहीं करता था। अगर उसे रोटी या सब्जी दी तो वह उसे सूँघता भी नहीं था। वह मांस, पनीर, दूध, मक्खन पसंद करता था। यूनान से आये लोगों ने मुझे एक बर्त्तन दिया, जिसमें मैं भोले का भोजन दो बजे रात में पकने रख देता था, जो दो बजे दिन में पक कर तैयार हो जाता था। मैंने अपने लिए तो कभी भोजन नहीं पकाया, परन्तु उसका भोजन मैं पकाता था। वह मुझे अपना भोजन पकाते देखता तो मेरे पैर चाटकर मानो कहता, 'स्वामीजी, धन्यवाद!'

भोले को अपना भोजन चट कर जाने में केवल दो से ढाई मिनट लगता था। खाते समय उसकी एक आँख भोजन पर और दूसरी आँख मेरे पर रहती थी। मुझे उसके पास खड़ा रहना पड़ता था, क्योंकि अगर मैं हट जाता तो वह भी खाना छोड़कर मेरे साथ चल देता! ऐसे ही किसी भी भक्त की भक्ति ईश्वर के प्रति होनी चाहिए, ऐसी ही लगन एक शिष्य की अपने गुरु के प्रति होनी चाहिए। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में कहा है न–

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

आप ईश्वर से कितना प्यार करते हैं? क्या उतना प्यार करते हैं जितना मेरे कुत्ते ने मुझसे किया? ईश्वर का कितना ख्याल आपके मन में रहता है? क्या उतना रहता

है जितना भोले का मेरे प्रति था? ईश्वर के प्रति आपकी सजगता कितनी है? क्या मेरे कुत्ते की भाँति है जो प्रतिपल, प्रतिक्षण, चौबीसों घण्टे, हर एक दिन मेरे प्रति सजग था? एक क्षण भी ऐसा नहीं होता था जब वह अपने मालिक, स्वामी सत्यानन्द के प्रति सजग न रहता हो।

पैसे वालों को जैसे पैसे का ख्याल रहता है, छोकरे को छोकरी का ख्याल रहता है और उदार व्यक्ति को देने का ख्याल रहता है, वैसे ही ईश्वर का ख्याल बना रहना चाहिए। कबीरदास तो और भी बढ़िया बात कहते हैं–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं सोऽहं सुरता गाई।
छः सौ सहस इक्कीसौ जाप, अनहत उपजै आपै आप॥

तुम्हें अपनी चेतना के प्रति सतत् सजग रहना चाहिए, हर पल, हर क्षण उसे याद रखना चाहिए, प्रत्येक आती-जाती श्वास के साथ तुम्हें सदैव सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं ही सुनना चाहिए। लेकिन इक्कीस हजार छः सौ जाप करें कैसे? आदमी सामान्य रूप से एक मिनट में पन्द्रह बार श्वास-प्रश्वास लेता है। एक घण्टे में हुआ नौ सौ, चौबीस घण्टे में हुआ इक्कीस हजार छः सौ। इसका मतलब यह हुआ कि चौबीस घण्टे में हर श्वास में तुम सोऽहं सोऽहं सोऽहं का ख्याल रखो। करो तो? यह तभी हो सकता है जब पेशाब रुक जाये, टट्टी रुक जाये, भूख रुक जाये, नींद रुक जाये, विक्षेप रुक जाये, तभी तुम इक्कीस हजार छः सौ सोऽहं जाप चौबीस घण्टे में कर सकते हो।

यह केवल भोले के लिये संभव था। चौबीस घण्टे उसको मेरा ख्याल रहता था। हमें तो आश्चर्य होता था कि भगवान, यह कुत्ता है! यह तो शिष्यत्व का सबसे बड़ा उदाहरण है! एक क्षण के लिये भी वह मुझे नहीं छोड़ता था। हमेशा मेरी तरफ देखता रहता था। कभी मेरी तरफ पीठ करके नहीं बैठा। मैं उसकी पीठ की तरफ चला जाता तो वह तुरंत घूम जाता था। बस, शिष्य का गुरु के साथ, भक्त का भगवान के साथ यही रिश्ता होना चाहिए।

–'भक्ति योग सागर–भाग 7' से उद्धृत

सदाचार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

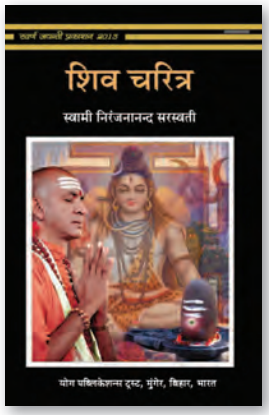

भगवान शिव ने माता पार्वती को जब पाशुपत धर्म की शिक्षा दी तो उस समय उन्होंने एक बात कही कि अगर व्यक्ति अपने जीवन में सदाचार वृत्ति का ही पालन करे, तो उसे और कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं है। पाशुपत धर्म का एक नियम समझाते हुए महादेव ने पार्वती से कहा कि सदाचार का पालन करने वाला मनुष्य ही मुझे प्राप्त करने के लिए योग्य व्यक्ति हो सकता है, क्योंकि जो व्यक्ति सदाचारी है, उसका मन कलुषित नहीं है, उसका हृदय, भावना, विचार और चिन्तन शुद्ध एवं पवित्र हैं। इसलिए ईश्वर प्राप्ति के लिए सदाचार को पहला चरण माना गया है।

ध्यान करते हो, लेकिन सदाचारी नहीं हो तो पूर्ण प्राप्ति नहीं होगी, आंशिक प्राप्ति होगी। लेकिन जब जीवन की अच्छाई, सरलता और सात्त्विकता तुम्हारे कर्मों में दिखलायी देने लगती है, तब वह सदाचार का रूप ले लेती है। इसलिए शास्त्रों में कहा गया है कि जब ईश्वर का अनुष्ठान या आराधना होती है, तब मनुष्य को अपने भीतर के सभी द्वेष, ईर्ष्या, घृणा और आक्रोश को पोटली में बाँधकर किनारे रख देना चाहिए। जब तक मैं साधना कर रहा हूँ, तब तक ये मेरी साधना में व्यवधान नहीं डालें।

सामान्य रूप से अनुष्ठान के समय लोग शरीर पर ज्यादा ध्यान देते हैं कि यह खाना चाहिए, वह नहीं, क्योंकि उनकी वृत्ति भोजन से जुड़ी है। क्या कभी किसी ने मानसिक आचरण के बारे में आज तक सोचा है कि मुझे यह नहीं करना चाहिए? खाने के लिए दिनभर चिन्ता करोगे, यह नहीं वह खाऊँगा, क्योंकि मैं अनुष्ठान कर रहा हूँ। लेकिन व्यवहार में कभी किसी ने यह सोचा कि मुझे यह नहीं करना चाहिए, मैं अनुष्ठान कर रहा हूँ? वास्तव में वही अनुष्ठान का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है। मन गंदा शरीर साफ, फायदा क्या हुआ? शरीर को तुम साबुन से रगड़कर धो दो। शास्त्रों में वर्णित आहार भी ग्रहण करो, पचा लो। शरीर हल्का-फुल्का लगेगा, स्फूर्ति रहेगी, ऊर्जा रहेगी, लेकिन अगर मन मलिन हो तो इस शारीरिक अनुभूति का फायदा क्या? अध्यात्म में तुम्हें जो भी प्राप्ति होनी है, अपनी भावना, विश्वास और निष्ठा के कारण होगी, शरीर के कारण नहीं। इसलिए शैवागमों और योग शास्त्रों में अपने मन में संयम रखने की शिक्षा दी जाती है।

योग में आसन शुरू करने के पहले क्या करना होता है? पातंजल योग दर्शन में लिखा है, पहले यम का अभ्यास करो, फिर नियम का अभ्यास करो, तीसरे नम्बर में आसन करो, फिर उसके बाद अन्य साधना करो। योग में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय आदि जो पाँच नियम हैं और सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि जो पाँच यम हैं, इनका प्रयोजन क्या है? मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन लाना। जब मन शान्त हो जाता है, तब आध्यात्मिक प्राप्ति होती है। अशान्त मन में प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए भारतीय साधना पद्धति में यमों और नियमों का महत्त्व है। चाहे कोई शैव मत का अनुयायी हो या शाक्त अथवा वैष्णव मत का, या फिर किसी मत का अनुयायी न हो, नास्तिक हो, तो भी हर व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मन को सम्हाले। और मन को सम्हालने के लिए यम एवं नियम का पालन करना आवश्यक है।

योग ग्रन्थों, शैवागमों और तंत्र साहित्य में बतलाया गया है कि इस जीवन में परिवर्तन की प्रक्रिया तब शुरू होती है जब मनुष्य सत्य का आश्रय ग्रहण करता है। इसलिए यम में सबसे पहले 'सत्य' का स्थान आता है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य—ये योग दर्शन में बतलाए गए पाँच यम है। इनकी शुरुआत तब होती है जब मनुष्य सत्य का आश्रय लेता है। यम और नियम का अभ्यास विकृत मानसिक अवस्था को ठीक करने के लिए किया जाता है, और जब एक बार विकृत मानसिक अवस्था ठीक हो जाती है, तब मनुष्य स्वत: सदाचार के मार्ग पर प्रवृत्त होता है।

—'शिव चरित्र' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

चार दिसम्बर की शाम को यहाँ पौने पाँच बजे, गोधूली की बेला में सीताजी का विवाह है, और इस विवाह के अवसर पर हमने शिवजी को निमन्त्रण दिया है। शिवजी ने वायदा किया है रामजी से कि प्रभु जब भी तुम्हारी शादी होगी, हम अवश्य आयेंगे। हमने सोचा कि वायदा तो वे पहले कर चुके हैं, अब सिर्फ उन्हें वायदे की याद दिलानी है, निमन्त्रण देना है। इसलिए यहाँ होने वाले सभी कीर्तन-भजन भगवान शिव को समर्पित होंगे। 'जय जय शिव भोले भण्डारी' इस सीता-कल्याणम् उत्सव का मुख्य भजन रहेगा। जैसे पिछले साल नाम-संकीर्तन था, इस साल यह है। इस भजन की रचना मैंने सन् 1944 में की थी, आज पचास साल से भी ऊपर हो गये हैं। तब से यह भजन बराबर चलता आ रहा है। अब की बार रिखिया में बहुत-से लोगों को बुलाया गया है। महात्माओं का प्रवचन होगा, पुरुषोत्तम जलोटा का कीर्तन होगा और दक्षिण भारत से आई हुई योगिनियाँ यज्ञ करेंगी।

जिस जगह तुमलोग अभी बैठे हो, इस भवन का नाम तपोवन है और इसका निर्माण एक विशेष संकल्प के साथ किया गया है। मुझे बीच-बीच में निर्देश प्राप्त होते रहते हैं, जिसे पुराणों की भाषा में आकाशवाणी कह सकते हो, और वही निर्देश मेरे जीवन का मार्गदर्शन करते हैं। दो साल पहले मैंने इस इलाके की वधुओं को द्विरागमन के समय सुहाग पेटियाँ देनी शुरू कीं और वह काम बहुत अच्छे से चल निकला। ऐसा नहीं कि सिर्फ मुझे ही यह विचार आया, बल्कि बहुत-से लोगों को प्रेरणा हुई। केवल हिन्दुस्तान ही नहीं, दुनियाभर के

लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई हों या नास्तिक, वे आगे आए और तरह-तरह के उपहार भेजने लगे। अब हर साल यहाँ की लड़कियाँ अपने पति के घर जाती हैं तो अपने साथ ऐसा सामान ले जाती हैं जो भगवान की ओर से मिला है। इस साल तो सामान की मानो बाढ़ ही आ गई। किसी ने पचास सूटकेस भिजवाए हैं तो कोई हिन्दुस्तान के बेहतरीन कपड़े-साड़ियाँ लाया है तो कोई सोने-चाँदी के जेवर भेज रहा है। ग्रीस और फ्रांस वाले अपने साथ सोलह शृंगार की चीजें लाए हैं। इस साल दान का काम दुहरा होगा। जो बहुएँ यहाँ से अपने ससुराल जा रही हैं, और जो इस पंचायत में ब्याह कर आ रही हैं, दोनों को सुहाग पेटियाँ दी जाएँगी। लगभग छः सौ की संख्या होगी। हम सोचते हैं ज्यादा होतीं तो और अच्छा होता।

सत्कर्म

यह काम सत्कर्म कहलाता है। सत्कर्म क्या है? धर्म। धर्म क्या है? ईश्वर से जुड़ना, मानवता से जुड़ना धर्म है। दूसरों के साथ एकता अनुभव करना धर्म है। ये तुम्हारी बहुएँ, तुम्हारी बेटियाँ हैं, ऐसा भाव दिल में लाना चाहिए। चार तारीख की शाम को तुम्हें यह देखने को मिलेगा। सभी नवविवाहिता लड़कियाँ आएँगी और अपनी सुहाग पेटियाँ लेंगी। औरतें समाज की सबसे कीमती चीजें हैं। मैं औरत से ही पैदा हुआ, तुम भी औरत से पैदा हुए। वह तुम्हारी पहली गुरु थी। उसी ने सबसे पहले तुम्हारी देखभाल की। वही तुम्हारी पहली प्रेमी थी। शायद दूसरी भी हो, कौन जाने! इसलिए औरतों का सम्मान करना, उनका ख्याल करना हम सब का फर्ज है, और इसीलिए सीता कल्याणम् का यह कार्यक्रम रखा गया है।

दूसरी बात, यह हॉल जिसमें तुम लोग बैठे हो, सत्संग के लिए नहीं बना है। आज हम इसका उद्घाटन कर रहे हैं, और अगले साल मकर संक्रांति से यहाँ बहुत अच्छा कार्यक्रम होने जा रहा है। इस इलाके की सौ विधवाएँ, जिनका जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं, वे यहाँ सबेरे आएँगी, दिनभर काम करेंगी और शाम को चली जाएँगी। एक मजदूर की तरह उन्हें दिन की मजदूरी दे दी जाएगी। दिनभर क्या काम करेंगी? जो अनपढ़ हैं वे महामंत्र का जप करेंगी, जो थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना जानती हैं वे लिखित जप करेंगी, कॉपी पर राम-राम लिखेंगी, लाखों-करोड़ों राम नाम। हम इन कॉपियों को संभालकर रखेंगे। तुम्हें मकान बनाना हो तो मुझसे दस कॉपियाँ माँग लेना और मकान की नींव में डाल देना। भगवान का नाम तुम्हारे घर का आधार बनेगा। जो विधवाएँ साक्षर हैं वे नीचे वाले कमरे में रामचरितमानस का पाठ करेंगी। जितने घण्टे काम करेंगी, उस हिसाब से मजदूरी दी जाएगी। पहले साल में सौ विधवाओं के लिए व्यवस्था की है। यह तो शुरुआत है, भगवान चाहें तो सबकी व्यवस्था कर सकते हैं।

जान को देत, अजान को देत, जहान को देत, तुम्हें वही दैहैं।
काहे को सोच करे मन मूरख, जिन चोंच दिये तिन चून भी दैहैं॥

भगवान सभी चराचर प्राणियों को खिलाते हैं, सारे ब्रह्माण्ड का पालन-पोषण करते हैं, तुम्हारी भी देखभाल करेंगे। सौ की संख्या तो एक छोटी-सी शुरुआत है। तुम सबको संकल्प करना चाहिए कि एक दिन ऐसा आए जब इस क्षेत्र की सभी विधवाओं को सहारा मिल जाए। यह नहीं कि वे अमीर हो जाएँ। अमीरी मुझे पसंद भी नहीं। तुम्हें यह संकल्प लेना चाहिए कि यहाँ की हर विधवा को दो वक्त का खाना नसीब हो जाए। यह सत्कर्म है और सत्कर्म ही आध्यात्मिक जीवन की प्राइमरी क्लास है। यही अध्यात्म, वेदान्त, सांख्य, योग, इस्लाम, ईसाई और वैदिक धर्म का क-ख-ग है। कोई भी धर्म तब तक अनुकरणीय नहीं हो सकता जब तक उसका पहला पाठ, उसकी पहली शिक्षा सत्कर्म न हो। कुण्डलिनी योग के बारे में मत सोचो, वेदान्त और अहं ब्रह्मास्मि के बारे में मत सोचो, बल्कि यह सोचो कि तुम दूसरों के लिए क्या सत्कर्म कर सकते हो। अपने बीवी-बच्चों-भाइयों-बहनों या अपने खुद के लिए नहीं, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति के लिए सोचो जिसका तुमसे कोई रिश्ता नहीं है। यही सत्कर्म है, यही सेवा है।

मेरे गुरु हमेशा मुझसे कहा करते थे, 'सत्यानन्द! अगर तुम आध्यात्मिक जीवन में ऊँचा उठना चाहते हो तो पहले प्राइमरी स्कूल में भर्ती होना पड़ेगा।' अध्यात्म के कॉलेज में सीधा दाखिला लेने की मत सोचो। पहले अ-आ-इ-ई सीखो, फिर शब्द और वाक्य लिखना सीखो, उसके बाद व्याकरण सीखो। तब जाकर तुम साहित्य, विज्ञान आदि की कक्षा में जाने के लायक बनोगे। अगर तुम सीधे कॉलेज चले जाओ और स्वामी निरंजन से कहो कि मुझे कुण्डलिनी योग सिखाइये, तो तुम भी मूर्ख और अगर वह तुम्हें सिखाये तो वह भी मूर्ख। खेत तैयार नहीं और तुम बीज बो रहे हो! सेवा आध्यात्मिक जीवन का पहला, प्रेम दूसरा और दान तीसरा पाठ है। इसके बाद ही आत्मशुद्धि, ध्यान और ईश्वर-साक्षात्कार का नम्बर आता है।

साथ ही हमने विकलांग बच्चों के लिए भी बड़ी योजना बनाई है। मैंने स्वामी निरंजन से इस इलाके के सभी विकलांग बच्चों के लिए एक हजार ट्राइसाइकल मँगाने के लिए कहा है। इस पंचायत में कोई भी विकलांग

बच्चा बिना ट्राइसाइकल के नहीं रहेगा। वह उसके सहारे पढ़ने जा सकेगा, काम कर सकेगा।

यही मनुष्य का धर्म है, दायित्व है, कर्तव्य है। अपना सामाजिक दायित्व निभाने के अलावा तुम्हारा और कोई धार्मिक दायित्व नहीं है। समाज का मतलब केवल अपने देश का समाज नहीं, बल्कि पूरे विश्व का समाज। आखिर परिवार और समाज की परिभाषा क्या है? सिर्फ पति, पत्नी और दो बच्चे? *अयं निज: परो वेति गणना लधुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।* 'यह मेरा है, वह तुम्हारा है—ऐसी गणना संकीर्ण हृदय वाले करते हैं। जिनका दिल बड़ा है उनके लिए तो सारा संसार ही परिवार समान है।' आध्यात्मिक जीवन का भी यही सिद्धान्त है।

यहाँ के गाँववालों से मुझे बहुत सहयोग मिला है, चाहे वे महिलाएँ हों या बच्चे या गाँव के मुखिया या प्रधान। स्थानीय सहयोग के बिना कोई अच्छा काम नहीं किया जा सकता। केवल पैसे से ही सब कुछ नहीं होता। इस तरह के सत्कर्मों के लिए मुंगेर में सहयोग की कमी थी। हाँ, योग के क्षेत्र में बात दूसरी थी। अगर मुंगेर के लोग न होते तो शायद बिहार योग विद्यालय का उद्भव और विकास हो ही नहीं पाता। मुंगेरवालों का सहयोग और पाश्चात्य लोगों का प्रोत्साहन, ये बिहार योग विद्यालय की सफलता के पीछे मुख्य कारण रहे हैं। लेकिन जहाँ तक इस तरह के काम का सवाल है, यह मुंगेर में नहीं हो पाया। वहाँ मैं दस मकान बनवाने के लिए कहता और लोग सारा पैसा अपनी जेब में डाल देते। यहाँ लोग ऐसा नहीं करते। वे ऐसा करना जानते ही नहीं। मुंगेर में एक बार छात्रवृत्ति देने की योजना शुरू की। हम चार सौ विद्यार्थियों को स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई के लिए वजीफा देने लगे। इनमें आधे लड़के थे, आधी लड़कियाँ। लेकिन गाँव के मुखिया, यहाँ तक कि सरकारी अधिकारी भी झूठे प्रमाणपत्र देने लगे। विद्यार्थी का स्कूल में नाम तक नहीं और उसके नाम पर वजीफा लिया जा रहा है! इसलिए मुझे वह बंद करना पड़ा। बाद में हमलोगों ने ट्यूब-वेल्स की मरम्मत करानी शुरू की। वहाँ भी यही हुआ। मुझे लगा कि समाज अभी सत्कर्मों में सहयोग करने के लिए तैयार नहीं, उसे अपने हाल पर छोड़ देना ही बेहतर है।

लेकिन देवघर में, खासकर रिखिया पंचायत के लोगों में उत्साह और सहयोग की भावना बहुत है। हमारे आश्रम में गोशाला है, जहाँ आस-पास के गाँवों से लोग हर सुबह गोसेवा के लिए आते हैं। पंचायत के प्रधान ने तय कर रखा है कि एक दिन इस गाँव से चार लोग आएँगे, अगले दिन दूसरे गाँव से। इस तरह पूरी सूची बना रखी है। हर गाँव से लोग आते हैं और गोशाला में काम करते हैं। जब लोग तुम्हारी मदद के लिए इस तरह तैयार हों तो तुम्हारा भी फर्ज बनता है कि उनकी मदद करो। तुम्हें मालूम है न बिजली की कितनी दिक्कत होती है बिहार में! मुंगेर

में बिजली नहीं रहती, देवघर में बिजली नहीं रहती, पर देवघर से बाहर होते हुए भी यहाँ बिजली रहती है, क्योंकि हमें स्थानीय लोगों का सहयोग और सद्भाव प्राप्त है। वे चाहते हैं कि यहाँ बिजली रहे।

महिलाओं का उत्थान

द्विरागमन में जाने वाली लड़कियों की सुहाग पेटियाँ तो बन गईं, पर मैंने पूछा कि जो वधुएँ बाहर से यहाँ आई हैं, उनका क्या होगा? जवाब मिला कि उनकी तो सूची बनी नहीं। कल मुखिया को पकड़ा, कहा सूची तैयार करो। अब सूची आ गई है और आज सब दौड़-भाग कर रहे हैं तैयारी में। मैंने कह दिया है कि लड़की की शादी में सोना-चाँदी जरूरी है, मिठाई-पकौड़ा से काम नहीं चलेगा। मिठाई-पकौड़ा रामजी के लिए चलता है, पर यह तो सीताजी के शकुन का है, और हम तो इस बात को मानते हैं कि लक्ष्मीजी कहीं भी जाती हैं तो वहाँ सूटकेस भरकर जाती हैं। तुम्हारे घर में लड़की कभी भी खाली हाथ नहीं आई, वह लक्ष्मी बनकर आई और तुमने उसको बना दिया नौकरानी। कैसी विडम्बना है यह! सारे सामाजिक नियम लक्ष्मीजी के लिये, पर अपने लिए कुछ नहीं! वह विधवा हो जाती है तो कपड़ा बदल जाता है। मंगल अवसरों में न जाने का भी सामाजिक नियम बन जाता है। लेकिन जब आदमी विधुर होता है तो वही कोट-पतलून पहनकर चलता है, उस पर कोई रोकटोक नहीं रहती।

जहाँ पर नियमों में भेद होता है उसको कहते हैं अन्याय। यह स्त्री के साथ सरासर अन्याय है। नियम हों तो दोनों के लिए एक समान हों। अगर स्त्री को

सफेद वस्त्र पहनने को बोलते हो, आभूषणरहित रहने को बोलते हो, टीका-चंदन लगाने से मना करते हो, मंगल-कार्यों में जाने से रोकते हो, तो पुरुषों पर भी वही बन्धन होना चाहिये। तब जाकर हम इन नियमों को स्वीकार करेंगे। हमारा दिमाग तो यही कहता है।

जो लक्ष्मी तुम्हारे घर खाली हाथ नहीं आई, बल्कि भरपूर मंगल लेकर आई, सोना-चाँदी लाई, स्कूटर-मोटरसाइकल लाई, उसका बेटा उससे अपना जूठा बर्तन मँजवाता है! वह अपनी मरजी से माँजे वह दूसरी बात है, मगर माँ के साथ, पत्नी के साथ, बेटी के साथ और बहन के साथ वह व्यवहार नहीं होना चाहिये जो लड़के के साथ होता है। लड़का तो लोहे की छड़ की तरह है, कहीं पर भी रख दो। पर लड़की सोना होती है, उसे तिजोरी में संभालकर रखना पड़ता है। सामाजिक जीवन में मूल्यवान् वस्तुओं के प्रति मर्यादाएँ होती हैं। मैं उन मर्यादाओं के खिलाफ नहीं बोल रहा हूँ, मैं यहाँ सम्मान की बात बोल रहा हूँ, अपनी विचारधारा की बात बोल रहा हूँ। मैंने हमेशा इस बात पर जोर दिया है और आज भी जोर देता हूँ कि हमारी लड़कियों को समाज का सम्पूर्ण न्याय मिलना चाहिये। हम बड़े-बुजुर्ग लोगों को एक बार बैठकर आत्मचिन्तन करना होगा। अपने लिये ज्यादा अधिकार और उसके लिये कुछ नहीं, यह सही नहीं है। मर्द एक गलती करता है, पर उसको आठ खून माफ। एक गलती लड़की करती है, पर उसकी गलती माफ नहीं, यह कोई न्याय है? तुम लड़के के आठ खून माफ कर सकते हो, पर लड़की का एक खून माफ नहीं कर सकते!

रामचरितमानस–समृद्धि की गारण्टी

जैसे गुलाब सुगन्ध का प्रतीक है, चंद्रमा शीतलता का प्रतीक है, सूर्य ताप का प्रतीक है, जल जीवन का प्रतीक है, वैसे ही रामचरितमानस मंगल का प्रतीक है। वह जहाँ रहेगा उस घर में मंगल रहेगा। लोग इस बात को अगर समझ लेंगे तो जरूर पढ़ेंगे। हमारे इलाके में जो बूढ़ी विधवाएँ हैं, जिनके जाने का टिकट भी कट चुका है, वे भी रामचरितमानस पढ़ने लग गई हैं। यह चीज हमारे देश के सभ्य लोगों को आज सीखनी होगी। साक्षरता का आधार रामचरितमानस है। इससे एक पंथ दो काज हो जाते हैं। साक्षरता आ जाती है और साथ-ही-साथ मनुष्य के जीवन में कर्तव्यों के प्रति संघर्ष का जन्म होता है। जब तक कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच संघर्ष का जन्म नहीं होगा, तब तक कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय मनुष्य नहीं कर सकता। अच्छे और बुरे, दोनों का ज्ञान जब हमको होगा तब हम सही निर्णय ले सकते हैं।

रामचरितमानस धर्म का काव्य, धर्म का ग्रंथ है, और हमारे भारतीय जीवन का एक बहुत सुन्दर प्रतीक है, नमूना है। इसे हमारे लड़के-लड़कियों को जरूर सिखाना चाहिये और कच्ची उम्र में सिखाना चाहिये। उनके माँ-बाप को भी सिखाना

चाहिये ताकि रोज घर में बैठकर इसका पाठ हो। यह सूत्र जो हमने यहाँ पकड़ा है, इसने दावानल की तरह काम किया है। अब तो हमें मुश्किल हो गयी है। हमें गाँव का सरपंच बोलता है, सब लोग बोलते हैं कि मोटा वाला रामायण लाकर दो, हम अर्थ के साथ पढ़ेंगे। देवघर में गीता प्रेस वाले की दुकान खाली हो गयी है, कहता है कि है ही नहीं। हमने कहा, मँगाओ कहीं से। लोगों की रामचरितमानस में इतनी रुचि हो गई है!

जब सती ने पार्वती के रूप में पुनर्जन्म लिया और उनका विवाह शिवजी से हुआ तो एक दिन उन्होंने शिवजी से कहा कि भगवन्, पिछले जन्म में मेरी खोपड़ी जरा सी उल्टी-पुल्टी हो गई थी और मुझे श्रीराम की दिव्यता पर संदेह हो गया था। मगर आज मेरी मति थोड़ी ठीक है, अब आप मुझे श्रीराम के बारे में बताइये। भगवान राम की कथा के जो प्रसंग हैं, कैसे विश्वामित्र जी लेने के लिये आए, कैसे ताड़का का वध हुआ, कैसे अहल्या का उद्धार हुआ, कैसे धनुष-भंग हुआ, कैसे परुशराम जी का मान-भंग हुआ, किस तरह से वे वनवास में गये, मुझे ये सब अलग-अलग सुनाइये। तब शिवजी उनसे बड़ी सुन्दर चौपाई कहते हैं, '*सकल लोक जग पावनी गंगा, पूछेहूँ रघुपति कथा प्रसंगा।*' शिवजी कहते हैं कि राम कथा के जो प्रसंग हैं ये पावन गंगा के समान हैं। गंगोत्री से निकलकर गंगा ऋषिकेश आती है, हरिद्वार आती है, फिर प्रयाग जाती है, ये उसके अलग-अलग पड़ाव हैं। ठीक वैसे ही ये प्रसंग राम-कथा के अलग-अलग पड़ाव हैं। राम की पूजा करो या न करो, तुम्हारी इच्छा है, लेकिन राम-कथा तो सुननी ही चाहिये, क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो ईश्वर होते हुए भी, ईश्वर की सारी शक्ति से सम्पन्न

होते हुए भी साधारण मनुष्य की तरह व्यवहार कर रहा था। जो अनन्त शक्तिवाला है, वह जब मनुष्य शरीर में उतरा और मनुष्य के रूप में व्यवहार किया तो उसको मर्यादा कहते हैं। अगर उस वक्त वह सर्वशक्तिमान् के रूप में व्यवहार करता तो मर्यादा नहीं कहलाती। मर्यादा व्यक्तिगत भी होती है, और पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय भी।

शिवजी ने पार्वतीजी से ऐसा कह दिया तो आपको विश्वास होना चाहिये कि जब आप रामचरितमानस का पाठ करते हो तो रोज अपने घर में पवित्र गंगा का प्रवाह लाते हो। साथ ही भारत सरकार का साक्षरता प्रोग्राम भी सफल हो जाता है। एक पंथ दो काज! आखिर पढ़ना ही तो है न! शाहजहाँ की बेटी कौन थी या औरंगजेब का बेटा कौन था, यह सब पढ़ना हमारे तो काम नहीं आया। हमारे काम वही चीज आई जो गुरुजी के आश्रम में बारह साल सीखी। इतिहास को मैं भूल चुका हूँ, भूगोल को मैं फेंक चुका हूँ, केवल गुरुजी ने मुझे जो सिखाया वही एक-एक चीज आज मेरे जीवन में काम आ रही है।

रामचरितमानस तुम्हें दौलत देगा, तुम्हारे घर का छप्पर टूटेगा और वहाँ से सोना बरसेगा, यह तो मैं तुमको गारण्टी नहीं दे सकता, मगर एक गारण्टी देता हूँ—रामचरितमानस तुम्हारे घर-गृहस्थी को समृद्ध बनाएगा। समृद्धि का क्या मतलब होता है? आज गुलाब के पौधे पर एक फूल लगा, कल दो लग गये, परसों तीन लग गये, इसको कहते हैं समृद्धि। तुम्हारा एक छोटा-सा घर बन गया, अगले साल उसमें एक टॉयलेट जोड़ देना, अगले साल सेप्टिक टैंक लगा देना, एक कमरा और बना देना। इस साल लकड़ी का चूल्हा है, अगले साल गैस का कर देना। इसको कहते हैं समृद्धि। समृद्धि मनुष्य को विनम्र बनाती है, उसे उसकी सीमाओं में रखती है। वह अपनी कमजोरियों को, अपनी सीमाओं को पहचानता है, पर जब छप्पर फटकर सोना बरसता है तो आदमी पागल हो जाता है। जहाँ सम्पति आएगी वहाँ दुर्गुण और व्यसन आयेंगे, वहाँ संघर्ष का नाश हो जायेगा, वहाँ आदमी बेवकूफ हो जायेगा। पक्की बात है। विश्वास न हो तो पैसेवालों से पूछ लो। पैसेवालों से ज्यादा बेवकूफ तो दुनिया में कोई होता नहीं। बुरा नहीं मानना भाई, यहाँ बहुत पैसेवाले बैठे हैं, लेकिन हम साफ बोलते हैं, सम्पत्ति से संघर्ष समाप्त हो जाता है। जिसके पास प्रभुता और सम्पत्ति है उसके पास घमंड आयेगा ही। कोई विरला छूट जाए तो दूसरी बात है, मगर सामान्य रूप से तो ऐसा ही देखा है। इसलिए सम्पत्ति नहीं, समृद्धि होनी चाहिए, और समृद्धि को घर में लाने की गारण्टी है रामचरितमानस। मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारे घर में सोना-चाँदी बरसेगा, चार-पाँच मंजिले मकान बन जायेंगे, गाड़ियाँ सामने खड़ी रहेंगी, मगर जीवन में खुशहाली निश्चित रूप से आयेगी।

—24 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

गुरु के साथ श्रद्धापूर्ण सम्बन्ध

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

भारत ऋषियों और मुनियों का देश रहा है। जब हम अपने इतिहास को पढ़ते हैं तो उसमें ऋषि-मुनियों और साधु-संन्यासियों का नाम ही सबसे पहले आता है। उसके बाद राजाओं का और फिर प्रजा का नाम आता है। आदिकाल से जब हमारे देश में ऋषियों, मुनियों और मनीषियों की परंपरा रही है तो इसका अर्थ यही निकलता है कि हमारे देश में ही ज्ञान की ज्योति सबसे पहले जली थी। ऋषि-मुनि ही इस ज्ञान के अनुभवकर्ता रहे और समाज में इस ज्ञान के प्रचारक रहे।

व्यास पूर्णिमा

हमारी संस्कृति की शुरुआत होती है सप्तऋषियों से। ये सप्तऋषि तपस्वी और त्यागी तो थे ही, साथ ही चिन्तक भी थे। वे भौतिक, सामाजिक और आंतरिक आध्यात्मिक चिंतन से युक्त रहते थे तथा समाज के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये हमेशा प्रयत्नशील भी रहते थे। उनकी शिक्षाओं और अनुभवों का बाद में संकलन हुआ, और यह काम किया महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र भगवान वेदव्यास ने। वेदव्यास जी के पूर्व ऋषियों की परंपरा मौखिक रही। उन्होंने कहा, हमने सुना। हमने कहा, आपने सुना। आपने कहा, किसी और ने सुना। इस प्रकार श्रुति और स्मृति के माध्यम से सबसे पहले शिक्षा का प्रसार होता है,

लेकिन इन शिक्षाओं का जो विषयबद्ध संकलन हुआ, उसे किया महर्षि वेदव्यास ने। आज हमलोग जो गुरुपूर्णिमा उत्सव मना रहे हैं उसका एक नाम व्यास पूर्णिमा भी है और यह शुभ दिन भगवान वेदव्यास को ही समर्पित है, जिन्होंने इस संसार को ज्ञान से आलोकित किया।

उसके पश्चात् द्वापर से लेकर कलियुग तक इस धरती पर जितने भी ऋषि-मनीषी, साधु-संत आये हैं, सभी ने महर्षि वेदव्यास की शिक्षाओं का अनुसरण किया है और उनको विश्वगुरु के रूप में मान्यता प्रदान की है। चार वेदों, अठारह पुराणों और अपने भारत के जितने भी प्राचीन साहित्य हैं, सबमें महर्षि वेदव्यास का हाथ रहा है, जो बतलाता है कि हमारे बीच एक ऐसे मनीषी, विद्वान्, संत, तपस्वी और सिद्ध रहे जिन्होंने ज्ञान के प्रसार में कोई कसर नहीं छोड़ी। यही साधुओं की, यही गुरुओं की परंपरा रही है।

गुरु का अर्थ

गुरु शब्द का अर्थ भी यही होता है कि जो हमें अंधकार से बाहर निकाले। लेकिन जिस अंधकार से बाहर निकालने की बात की जा रही है, वह भौतिक या प्राकृतिक अंधकार नहीं, बल्कि अपने जीवन में माया का अंधकार है। यह अंधकार ज्ञान, बुद्धि और समझ का अभाव है। जब ज्ञान ही नहीं, बुद्धि ही नहीं, समझ ही नहीं, तो मनुष्य किस प्रकार के पुरुषार्थ को कर पायेगा? गुरु वह है जो हमारे जीवन से अज्ञान को दूर करे, हमें विवेक बुद्धि प्रदान करें और जीवन की व्यावहारिकता समझाये। जो हमें माया और अज्ञान के अंधकार से दूर निकालने में सक्षम होता है, उसी को वास्तव में गुरु कहते हैं।

अगर आप अपनी आध्यात्मिक संस्कृति और इतिहास का अवलोकन करोगे तो यही पाओगे कि समय-समय पर जो भी महापुरुष आये, उन्होंने समय की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा प्रदान की। इसलिये किसी भी शिक्षा को हमारे मनीषियों ने अंतिम वाक्य नहीं माना है। श्रीराम आये, उन्होंने समय के अनुसार मनुष्य को मर्यादा का पाठ पढ़ाया, स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम बनकर। श्रीकृष्ण आये, उन्होंने भी उस युग के प्रासंगिक विषय का चयन किया, कर्तव्य और धर्म। महावीर और बुद्ध आये, उन्होंने समय के अनुसार मानवता को अहिंसा का पाठ दिया। इस प्रकार जितने भी अवतार, साधु-संत या ऋषि-मुनि इस धरती पर आए उन्होंने समाज के सामने उस काल के लिये प्रासंगिक विषय और शिक्षा को प्रस्तुत किया। और समाज उनकी शिक्षा को आत्मसात् करके अपने आपको अंधकार की स्थिति से बाहर निकालने में सक्षम भी हुआ। महावीर और बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार पूरे भारत में हुआ। अगर आधुनिक संदर्भ में हमलोग आते हैं और आधुनिक संत-महात्माओं को देखते हैं तो पाते हैं कि उन्होंने भी आध्यात्म की शिक्षा को समय के

अनुकूल बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत किया है। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानंद जी, जिनकी परंपरा वेदान्त की थी, उन्होंने समाज के लिये वेदान्त नहीं, योग की शिक्षा पर जोर दिया। हमारे गुरु, स्वामी सत्यानंद जी का भी जब तक मुंगेर में वास था, उन्होंने योग पर ही जोर दिया, क्योंकि यह समय के अनुकूल और इस वातावरण के लिये प्रासंगिक है।

इस प्रकार आज तक हमारे जितने भी ऋषि-मनीषी और साधु-संत रहे हैं, उन्होंने समाज की मानसिकता को जानकर और इस बात को समझकर कि समाज को किस ओर ले जाना है, उन्होंने एक शिक्षा को हर काल के लिये, हर युग के लिये निश्चित किया। इसी शिक्षा के माध्यम से हम अपने जीवन की तामसिकता को, जीवन के अंधकार को दूर कर पाते हैं। इस तरह की शिक्षा देने वाला गुरु केवल भौतिक नहीं होता। आप स्कूल या कॉलेज जाते हो, वहाँ आपको जिसने पढ़ाया वह आपका शिक्षक था। उसने आपको भौतिक जगत् का ज्ञान प्रदान किया। उस ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् जब आपको डिग्री मिल गयी, तब आप उस संस्थान से और उस शिक्षक से स्वतंत्र हो गये। यह होता है भौतिक स्तर पर, लेकिन अध्यात्म के स्तर पर अज्ञान और माया को दूर करने के लिये एक दूसरी प्रक्रिया ही आरंभ होती है। जब किसी आध्यात्मिक गुरु से हमारा संबंध बनता है तब वह अल्पकालिक नहीं होता, बल्कि लम्बी अवधि के लिये होता है। अध्यात्म गुरु हमें कोई भौतिक शिक्षा तो नहीं दे रहे हैं, जिसका अध्ययन हम एक-दो साल में कर सकें और उसके बाद डिग्री लेकर निकल जायें। बल्कि गुरु हमें जो शिक्षा दे रहे हैं, वह तो हमारे जीवन में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की खोज के लिये है, पूर्णता की ओर जाने के लिये है, अपने जीवन के सभी तापों से मुक्ति पाने के लिये है। क्या यह शिक्षा एक साल या पाँच साल या दस साल में कोई ग्रहण कर पायेगा?

स्कूल या कॉलेज में विद्यार्थी का संबंध अपने शिक्षक के साथ पठन काल के दौरान ही रहता है, लेकिन अध्यात्म के क्षेत्र में गुरु के साथ संबंध आजीवन रहता है। यह संबंध इस विश्वास पर आधारित रहता है कि 'गुरु मुझे सन्मार्ग से कभी भी च्युत नहीं होने देंगे, इसलिए मैं इन पर विश्वास करता हूँ और इनके निर्देशों का पालन करता हूँ।' अगर संबंध में यह विचार रहे तो संबंध और प्रगाढ़ होता है। लेकिन अगर संदेह की दृष्टि आ जाये तो वहाँ पर संबंध- विच्छेद भी होता है। इसीलिये कहा जाता है कि गुरु-शिष्य संबंध में श्रद्धा-विश्वास का होना आवश्यक रहता है, इस भाव का होना आवश्यकत रहता है कि मेरे गुरु मुझे कभी भी गलत रास्ते में जाने के लिये नहीं कहेंगे। तभी जाकर शिष्य अपने जीवन में गुरु की शिक्षा को आत्मसात् कर पाता है, अन्यथा नहीं। और जब शिष्य गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात् कर लेता है तब फिर वह मोह-माया के बंधन से मुक्त होकर आंतरिक स्वतंत्रता को प्राप्त करता है। आंतरिक स्वतंत्रता का मतलब होता है, सभी दोषों और विकारों से मुक्ति।

गुरु के प्रति श्रद्धा-विश्वास

अब बात आती है कि गुरु करते क्या हैं और गुरु के साथ किस प्रकार का संबंध होना चाहिये? गुरु अनेक प्रकार के होते हैं और सबके दृष्टांत एवं उदाहरण अलग-अलग हो सकते हैं। अगर तुमने तिब्बत के महान् योगी मिलारेप्पा के बारे में सुना है, तो मालूम होगा कि जब वे अपने गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये गये तो गुरु ने उनसे पूछा कि तुम यहाँ क्यों आये हो। मिलारेप्पा कहता है कि मैं आपसे सीखने आया हूँ। गुरु कहते हैं कि तुम आश्रम में रहो, लेकिन तुम किसी भी कक्षा में भाग नहीं लोगे, केवल यहाँ पर सेवा का काम करोगे। मिलारेप्पा सोचता है, 'मैं तो यहाँ पर गुरुजी से शिक्षा लेने आया था, लेकिन गुरुजी कहते हैं कि तुम किसी भी कक्षा में भाग नहीं लोगे, तुम्हारा किसी सत्संग या आध्यात्मिक वार्ता से संबंध

नहीं रहेगा, केवल भेड़-बकरी का ख्याल रखना है, झाड़ू देना है, साफ-सफाई करनी है। चलो कोई बात नहीं। कम-से-कम मेरा दाखिला तो हो गया। मुझे मना तो नहीं किया गया कि तुम्हें नहीं लेंगे, जाओ यहाँ से।'

अब आप अपने आपको उसकी जगह पर देखिये। आप तो लड़ाई करने लग जाओगे। 'यह कैसे संभव है? मैं तो यहाँ सीखने आया हूँ, मेरा अधिकार है सीखने का।' दो-चार बातें और बोल दोगे, हाथापाई की भी नौबत आ सकती है। लेकिन मिलारेप्पा ने ऐसा नहीं सोचा। उसने सोचा, चलो कक्षा न सही, कम-से-कम गुरु का सान्निध्य तो मिल गया। 'मुझे यह प्राप्त नहीं हुआ, गुरुजी ने मुझे मना कर दिया, मुझे यह नहीं मिल रहा,' तुम लोग अपने जीवन में यही सब देखते हो, लेकिन यहाँ पर मिलारेप्पा की श्रद्धा और विश्वास को देखो। ठीक है, कक्षा नहीं, सत्संग नहीं, शिक्षा नहीं, लेकिन सान्निध्य की अनुमति तो मिल गयी, वही पर्याप्त है। ऐसा मानकर उसने खूब काम किया, और एक दिन ऐसा आया कि जब गुरु खुद उसे कहते हैं कि मिलारेप्पा, आज तुम मुझ से महान् हो गये हो। मिलारेप्पा को मालूम भी नहीं कि उसने क्या प्राप्त किया, लेकिन उसकी अंतरंग भावना के अनुसार उसकी जो उपलब्धि थी, वह इतनी महान् थी कि स्वयं गुरु उसके सामने उसे स्वीकार करते हैं।

इस शिष्य के जीवन में क्या दिखलाई दिया? श्रद्धा और विश्वास। इसी तरह एकलव्य के जीवन में क्या दिखलाई दिया? गुरु ने कह दिया कि मैं तुमको विद्या प्रदान नहीं करूँगा। लेकिन एकलव्य गुरु की प्रतिमा के सामने नतमस्तक होकर, श्रद्धा और विश्वास से युक्त होकर अर्जुन से भी महान् धर्नुधारी बना। केवल अपनी श्रद्धा और विश्वास के बल पर। उसे तो गुरु का सान्निध्य भी प्राप्त नहीं था। मिलारेप्पा को कम-से-कम सान्निध्य तो मिला। एकलव्य को अपने गुरु से न तो शिक्षा मिली, और न उनका सान्निध्य मिला। लेकिन उसके भीतर जो भाव था, उसने एकलव्य को अपने गुरु से जोड़ा और जिस शिक्षा की वह कामना करता था, उस शिक्षा को वह प्राप्त कर पाया।

अहंकार का त्याग

इस प्रकार अनेकों उदाहरण हम आपको दे सकते हैं, अतीत के और वर्तमान के, जो यह दर्शाते हैं कि अगर चेले में थोड़ी बहुत सद्बुद्धि हो कि इस संबंध को प्रगाढ़ करे, तो निश्चित रूप से उसका बेड़ा पार होता है। संबंध को दृढ़ बनाने के लिये अहंकार का त्याग करना पड़ता है। मन का नहीं, बुद्धि का नहीं, विषयों का नहीं, समाज और संसार का नहीं, वासनाओं और अपेक्षाओं का नहीं, बल्कि अपने अहंकार का त्याग करना होता है। अन्य कुछ त्याग मत करो, केवल अपने अहंकार के पीछे पड़ो। अहंकार जीवन की कठोरता है, जीवन की दुर्बुद्धि है। जब तुम्हारे भीतर अहंकार प्रकट होता है तो सद्बुद्धि एक किनारे खड़े हो जाती है और

दुर्बुद्धि अपने सभी शस्त्रों से सज्जित होकर सामने आती है। जब तुम्हारे जीवन में अहंकार उत्पन्न होता है, तब ज्ञान और विवेक सब किनारे हो जाते हैं, तथा इनके स्थान पर छल, कपट और मर्यादाहीन व्यवहार एवं कर्म प्रकट होते हैं।

इसलिए पूछता हूँ कि अहंकार के साथ अपने आराध्य और गुरु के पास जाओगे या अहंकार को छोड़कर जाओगे? गुरु के साथ अपने संबंध को प्रगाढ़ करने के लिये एक शिष्य को अपने अहंकार को ही त्यागने के लिये प्रयत्न करना है। जब अहंकार का त्याग हो जाता है तब उसके भीतर गुरु अपने सूक्ष्म रूप में जागृत होते हैं। बाहर का जो गुरु है वह अब आंतरिक गुरु के रूप में हर शिष्य के जीवन में प्रतिष्ठित होता है। एक बार जब अंदर का गुरु प्रतिष्ठित हो जाए तो फिर तुम कहीं पर भी रहो, किसी भी लोक में रहो, गुरु के साथ तुम्हारा संबंध अटूट रहता है। वही संबंध परिवर्तित हो जाता है स्वयं की आत्मा के साथ और वही संबंध फिर और घनीभूत होता है परमात्मा के साथ। रस्सी पकड़ने भर की देरी है और एक बार जब रस्सी को अच्छे से थाम लोगे तो कुएँ से निकलने में समय नहीं लगेगा। यही गुरु का सिद्धांत है, गुरु का दर्शन है।

गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर हमलोग इन्हीं विषयों पर चिंतन करें और शुभ संकल्प लें। अगर हम जीवन में उत्तमता और श्रेष्ठता को चाहते हैं तो हमें क्या करने की आवश्यकता है? क्या है वह तत्त्व जिसके साथ हमें जुड़ना है, क्या है वह तत्त्व जिसे हमें छोड़ना है? क्या है वह अनुभव जिसको प्राप्त करके हम ज्योतिर्मय हो सकते हैं, तथा किस प्रकार हम गुरुतत्त्व के साथ श्रद्धायुक्त और विश्वासयुक्त संबंध जोड़ सकते हैं?

–16 जुलाई 2016, गुरु पूर्णिमा महोत्सव, पादुका दर्शन

सत्यानन्द योग–जैसा मैंने जाना

स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती

यूँ तो कुछ आसनों का अभ्यास मैं बचपन से ही गाँव में रहते हुए, खेल-खेल में सीखकर करता आ रहा था, किन्तु बाद में बड़ा होने पर कहीं से एक योगासन चार्ट मंगाकर, उसमें छपी फोटो देख-देख कर मैंने अभ्यास करना जारी रखा।

एक लम्बे काल खण्ड के बाद चालीस वर्ष की आयु में मैं धनबाद में स्थित भारत सरकार के एक कार्यालय में सन् 1976 में सेवा देने आया। एक सुखद संयोग बना कि वहाँ बिहार योग विद्यालय का एक आश्रम था। नवम्बर 1977 में एक और संयोग बना कि उस आश्रम के स्वामी निश्चलानन्द जी द्वारा हमारे ऑफिसर्स क्लब में एक योग शिविर संचालित किया गया। मैंने उसमें सपत्नीक उत्सुकतापूर्वक भाग लिया। सत्यानन्द योग पद्धति से मेरा पहली बार परिचय हुआ और इस तरह पहली बार मैंने औपचारिक रूप से योग सीखा। इस शिविर के दौरान मैं मंत्रमुग्ध-सा रहा। मेरे लिए सभी कुछ नया था, यहाँ तक संन्यासी का यह रूप भी जो अनुकरणीय था।

उस शिविर में स्वामी निश्चलानन्द जी ने बताया कि अगले वर्ष नवम्बर में धनबाद में ही एक योग सम्मेलन श्री स्वामी सत्यानन्द जी की उपस्थिति में आयोजित होगा। मैंने कार्यालय से चार दिन अवकाश लिया, जिससे मैं चारों दिन सभी सत्रों में सपरिवार भाग ले सका। इस प्रकार बिहार योग पद्धति से सीधा साक्षात्कार हुआ। मई 1982 में योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र में भाग लेने का संयोग बना, जिससे योग अभ्यासों की गहराइयों को थोड़ा और जाना, साथ ही पाया आश्रम जीवन का अनुभव।

31 अप्रैल 1994 को भारत सरकार से अवकाश प्राप्ति मिली। उसके अठारहवें दिन मुझे कर्मसंन्यास में दीक्षित होने का सुअवसर मिला और साथ ही सेवा के रूप में मिला योग प्रशिक्षण का दायित्व। इस दौरान मैं नियमित रूप से योग के अभ्यासों को करते हुए उन्हें अनुभव के स्तर तक उतारने में लगा रहा था। पहले अजमेर में रहते हुए करीब तीन वर्ष और बाद में नोएडा में रहते हुए कुल मिलाकर चौदह वर्षों तक पूरे भारतवर्ष में (केवल उत्तर-पूर्व के राज्यों को छोड़कर) योग का प्रशिक्षण देता रहा। सन् 2008 में गंगा दर्शन आने पर यहाँ भी यही कार्य मुख्य रूप से करता रहा।

सत्यानन्द योग पद्धति की विशेषता है–आसन और प्राणायाम के अभ्यासों का सरल और वैज्ञानिक वर्गीकरण; आसनों और प्राणायाम के अभ्यासों को करने की विशिष्ट विधि; शिथिलीकरण के अभ्यास; षट्कर्म, विशेष रूप से नेति, कुंजल और लघु शंखप्रक्षालन के अभ्यास तथा योगनिद्रा। एक वाक्य में कहा जाए तो मनुष्य के व्यक्तित्व के सभी पक्षों में सकारात्मक प्रभाव पैदा करने के उद्देश्य से समग्रात्मक अभ्यासों का समायोजन ही इस पद्धति की विशेषता है।

इस पद्धति के बारे में अपनी सोच और समझ को प्रदर्शित करने के लिए 1996 में गुजरात के सौराष्ट्र सीमेण्ट्स में आयोजित एक योग शिविर का उदाहरण देना यथेष्ट होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस समय योग प्रशिक्षण देने का मुझे मात्र दो वर्ष का अनुभव था।

योग शिविर के आरम्भ होने की पूर्व सन्ध्या को प्रतिभागियों को सम्बोधित करते हुए मैंने शिविर के सत्रों आदि के बारे में बतलाया। उन्हें समझाया कि वे क्या और कैसे सीखने जा रहे हैं और ये अभ्यास उन्हें किस तरह और क्या लाभ पहुँचा सकते हैं। मेरी वार्त्ता पूरी होते ही वहाँ के वरिष्ठतम अधिकारी की पत्नी खड़ी होती हैं और कहती हैं, 'योग बहुत अच्छी विद्या है, मैंने पढ़ा है और जाना है। इसी कारण मैंने आपसे पहले तीन योग विशेषज्ञों को यहाँ प्रशिक्षण देने के लिए बुलवाया था। वे भी आप ही की तरह योग की बहुत प्रशंसा करते थे। किन्तु आज मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहती हूँ कि उन तीन-तीन विशेषज्ञों से सीखने के बाद भी हममें से किसी को अपने में कोई अन्तर आता दिखाई नहीं दिया। कहीं ऐसा न हो कि आपके शिविर के बाद भी हमें ऐसा ही कहना पड़े।'

यह सीधे-सीधे खुली चुनौती थी, सत्यानन्द योग पद्धति को वास्तविक रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध करने की। मैंने विनम्रतापूर्वक उस चुनौती को स्वीकार किया, क्योंकि मैं पूरी तरह आश्वस्त था इस पद्धति की उपयोगिता के बारे में। इसका परिणाम अत्यन्त सुखद रहा।

योग शिविर के समापन के पूर्व, वही महिला अन्य महिलाओं के समूह के साथ मुझसे विशेष रूप से मिलीं और मुझसे प्रश्न किया, 'आप हमें अगले योग शिविर के लिए कब समय देने जा रहे हैं?' मेरे पूछने पर कि आप मुझे दुबारा क्यों बुलाना चाहते हैं, उन्होंने बताया, 'इस बार हम सब ने अपने अन्दर आए सकारात्मक परिवर्तनों को अनुभव किया है। आपने जैसा आरम्भ में कहा था वैसा ही प्रभाव हमने योगाभ्यासों में पाया है।' तीन माह बाद मैं फिर से वहाँ गया भी था।

मेरी यह सोच आज भी बरकरार है, बल्कि हर क्षण बीतने पर यह और भी गहरी होती जा रही है। सत्यानन्द योग पद्धति योग प्रशिक्षण के रूप में अप्रतिम है और रहेगी भी। इस पद्धति के प्रशिक्षण के लिए न केवल योग प्रशिक्षक को बहुत संकल्पबद्ध होना होगा और अभ्यासों को स्वयं आत्मसात् करना होगा, बल्कि प्रतिभागियों को भी समय निकाल कर सीखने और फिर नियमित अभ्यास का संकल्प लेना होगा, तभी अपेक्षित परिणाम सामने आ सकते हैं। यह एक समग योग पद्धति है, इसे प्रभावी होना ही है। यह प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता है और उसकी सभी समस्याओं का समाधान कर सकती है। अन्य कहीं न ऐसी प्रशिक्षण पद्धति है और न ही प्रशिक्षक। और उनका भी क्या दोष? जैसा उन्होंने सीखा, वैसा ही सिखा रहे हैं।

श्रद्धा से हृदय परिपूर्ण रहे

शांत धवल उत्तुंग शिखर,
मुद्गल की पावन धरती पर,
है स्वप्न हुआ साकार यहाँ
गंगा दर्शन की भूमि पर।

स्वर्ण जयंती पूर्ण हुई,
हीरक की ओर पद बढ़ रहे।
एक अध्याय पूर्ण हुआ,
नवसृजन पुनः गुरु कर रहे।

यम-नियमों का बीज डालकर,
यौगिक जीवन अंकुरित होगा।
पुनः फलेगी योग विद्या
भारत भू महिमा मंडित होगा।

मनःप्रसाद और जप से जीवन,
आलोकित व स्पंदित होगा।
देकर क्षमा और आदर
मन पुष्पित व पल्लवित होगा।

शम-दम हैं कठिन, किन्तु दुःसाध्य नहीं,
संयम से हृदय की ज्योति जले,
कर रहा प्रयास हर शिष्य यही,
अपने लक्ष्य की ओर चले।

देकर जीवन तुझको गुरुवर,
हर श्वास में सेवा संकल्प रहे।
जो भटकूँ यदि लक्ष्य से कभी,
यम-नियमों से डोर बँधी रहे।

है यही प्रार्थना हर क्षण गुरुदेव,
श्रद्धा से हृदय परिपूर्ण रहे,
विश्वास सदैव दृढ़ रहे।

–एक अंकिचन शिष्य

गुरूणामाज्ञा अविचारणीया

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक बार एक सन्त ने अपने शिष्य की परीक्षा लेने के विचार से उसे अपनी कमर को पैर से दबाने का आदेश दिया। सन्त ने कहा, 'मेरी कमर में दर्द है। प्रिय शिष्य, क्या तुम अपने पैरों से उसे दबा दोगे?' शिष्य ने उत्तर दिया, 'महाराज! आपके पावन शरीर पर मैं अपने पैर कैसे रखूँ? यह तो बड़ा पाप है।' सन्त ने उत्तर दिया, 'पर क्या तुम मेरी आज्ञा न मान कर अपने पैर मेरी जिह्वा पर नहीं रख रहे हो? '

इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिये। गुरु की आज्ञा का पालन करने में शिष्य को अपनी बुद्धि नहीं लगानी चाहिये। उसे उद्दण्डता त्यागकर गुरु के प्रति सच्ची और स्थायी श्रद्धा का विकास करना चाहिये। सन्त की सेवा हर संभव उपाय से करनी चाहिये। उनके आदेशों का अविलम्ब पालन करना चाहिये, उनके लक्ष्य की पूर्ति में लगना चाहिये। उनमें अविचल श्रद्धा होनी चाहिये। सन्तों की लीला रहस्यमयी होती है। आपसे सन्त जो भी सेवा लेते हैं, आपके हित के लिये ही है। वे तो स्वयं नि:स्पृह होते हैं। अनेक प्रकार के आदेश देकर और आपकी अनेक प्रकार से परीक्षा ले कर आपको दिव्य ज्ञान का अधिकारी बनाते हैं।

सन्तों की सेवा चमत्कार देखने के लिये नहीं, बल्कि आध्यात्मिक लाभ हेतु करनी चाहिये । भगवत्-साक्षात्कार के लिये ही शरीर, मन और आत्मा से सन्त की सेवा करनी चाहिये। पत्नी, संतान, धन, सम्मान या अन्य किसी स्वार्थ को साधने की भावना से सन्तों की सेवा करना महामूर्खता है। यद्यपि सन्तों के संपर्क से सभी सांसारिक कार्यों में सफलता मिलती है, पर वह तो हीरे के बदले कौड़ी लेने के समान होगा।

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

_योगा_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

_योगविद्या_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1
	क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।